प्रवचनमाला—१

आध्यात्मिक आलोक

प्रवचनकार—

आचार्य श्री श्री १००८ श्री नानालालजी म. सा.

प्रकाशक—

श्री साधुमार्गी जैन बीकानेर श्रावक संघ

बीकानेर (राजस्थान)

प्रकाशक—

केशरीचन्द सेठिया

मत्री, श्री साधुमार्गी जैन बीकानेर श्रावक संघ

रागडी मोहल्ला, बीकानेर (राजस्थान)

सम्पादक—डॉ० मनोहर शर्मा

प्रथमावृत्ति—१००० (वि स २०३०, मिति आश्विन शुक्ला २)

मूल्य—१ ५० रु (एक रुपया, पचास पैसा)

मुद्रक—

भारत प्रिंटिंग प्रेस

सब्जीमण्डी, कोटगेट, बीकानेर

सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोद, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम् ।
माध्यस्थभाव विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ॥

परम पूज्य पिताश्री की

पावन स्मृति

में
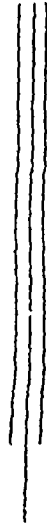
सुन्दरलाल तातेड

श्रीमान् सेठ सतीदास जी सा. तातेड़

परम आदरणीय स्वर्गीय सेठ सतीदास जी सा तातेड से मेरा अत्यन्त निकट का सम्पर्क रहा है। सघ के कई महानुभावो ने मुझ मे आग्रह किया कि मैं स्व श्री तातेड जी सा के धर्मानुरागी जीवन एव व्यक्तित्व पर कुछ प्रकाश डालू। तदनुसार मैं उनके जीवन के सम्बन्ध मे दो शब्द लिखने का प्रयास कर रहा हू।

श्रीमान् सेठ सतीदासजी सा तातेड का जन्म बीकानेर मे श्रीमान् सेठ मोतीलाल सा तातेड की धर्मपत्नी श्रीमती सोहनीबाई की कुक्षि से वि स १९४९, मिति भाद्रपद कृष्णा ९ को हुआ। आप वाल्यकाल मे ही श्रीमान् सेठ सरदारमलजी सा तातेड के गोद आ गए।

श्रीमान् सतीदासजी सा प्रात, दोपहर और सध्या तीनो समय सतो के स्थान पर पहुँच कर सामायिक आदि धार्मिक क्रियाओ एव व्याख्यान-श्रवण प्रभृति कार्यों मे अपना समय व्यतीत करते थे। आपने १५ वर्ष की अवस्था मे सचित्ताहार का त्याग एव ३५ वर्ष की युवावस्था मे सपत्नीक शीलव्रत अगीकार करके अपनी त्यागोन्मुखी वृत्ति का प्रकाशमान आदर्श उपस्थित किया।

आप सरल, सौम्य, सेवाभावी और समाज मे धार्मिक प्रवृत्तियो को बढवा देने के विविध कार्यों मे सदैव सक्रिय रहते थे। साधु एव साध्वियो की रुग्णता के समय उनके उपचार का प्रबध करना, दया आदि धार्मिक कृत्यो को करवाना, जीवदया के लिए आर्थिक साधन जुटाना आदि आपकी प्रमुख प्रवृत्तिया थी। गृहस्थावस्था मे रह कर भी जीवनपर्यन्त धार्मिक कार्यों मे व्यस्त रहना आपकी धन के प्रति लालसाहीनता का द्योतन है।

प्रकाशकीय

सत-महात्माओ का किसी नगर मे पधारना अत्यन्त मगलसूचक होने के साथ ही उस नगर के लिए परम सौभाग्य का विषय भी होता है। परम श्रद्धेय चारित्र-चूडामणि, बाल-ब्रह्मचारी, समता-दर्शन-व्याख्याता आचार्य श्री श्री १००८ श्री नानालाल जी म सा ने इस वर्ष चातुर्मास हेतु बीकानेर मे विराजमान होकर यहा की जनता को कृपापूर्वक कृतार्थ किया है। ऐसा सुअवसर प्राप्त करके बीकानेर और उसके आसपास की जनता अत्यन्त आह्लादित है और स्वय को गौरवान्वित अनुभव करती है।

परम श्रद्धेय आचार्यश्री के दैनिक कार्यक्रम का एक प्रमुख अग प्रात:कालीन प्रवचन है। आपका प्रत्येक प्रवचन प्रमुखत आध्यात्मिकता एव समता-दर्शन के प्रचार-प्रसार हेतु होता है और उसमे लोक-कल्याण की भावना ओतप्रोत रहती है। अत बहुत बडी सख्या मे श्रद्धालु भक्त इस कार्यक्रम मे प्रतिदिन उपस्थित होकर ज्ञान एव पुण्य-लाभ करते हैं।

परम श्रद्धेय अचार्यश्री के प्रवचन किसी एक समाज अथवा देश विशेष के लिए न होकर सम्पूर्ण मानव-जाति मे शाति तथा उदात्त भावनाओ का सचार करने की दृष्टि से होते हैं। ऐसी स्थिति मे यह अनुभव किया गया कि आपके प्रवचनो को पुस्तक—रूप मे प्रकाशित करके सर्वजन-सुलभ बनाया जावे, जिससे कि सुदूर बैठे हुए व्यक्ति भी अपने जीवन को परिमार्जितकरने एव ऊचा उठाने का अवसर प्राप्त कर सकें। फलत आचार्यश्री के ९ प्रवचनो का प्रथम सग्रह 'आध्यात्मिक आलोक' के नाम मे आपके सम्मुख प्रस्तुत है।

सघ की ओर से मनोनीत प्रवचन-प्रचार-प्रसार समिति के सयोजक श्रीमान् सुन्दरलाल जी सा तातेड ने इस पुस्तक को इतने अल्पकाल मे पूरी साज-सज्जा के साथ प्रकाशित करने मे जो श्रम किया है, उसके लिए तो आप हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं ही परन्तु साथ ही इस पुस्तक को अपने स्वर्गीय पिताश्री सेठ श्री सतीदास जी सा तातेड की पावन-स्मृति मे समर्पित करते हुए इसके प्रकाशन का सपूर्ण व्ययभार भी स्वय ही वहन किया है, एतदर्थ आप और भी अधिक साधुवाद के पात्र हैं।

स्वर्गीय सेठ सतीदास जी सा. तातेड की सरलता, उदारता एव सेवा-भावना सर्वविदित है, अत: आपके सबध मे इतना लिखना ही पर्याप्त है कि आपने धर्म-साधना करते हुए समाज मे एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया है ।

'श्रमणोपासक' के यशस्वी सपादक श्री देवकुमार जी जैन ने अपने अत्यत व्यस्त कार्यक्रम मे से समय निकाल कर 'आध्यात्मिक आलोक' की प्रस्तावना लिखना स्वीकार किया, एतदर्थ कृतज्ञता-ज्ञापन के साथ हार्दिक आभार प्रकट किया जाता है ।

'आध्यात्मिक आलोक' मे सकलित प्रवचनो को आचार्य श्री जी म सा. के विचार एव भाषा को यथावत् रखने की पूरी चेष्टा के साथ सपादित किया गया है । सम्पादन कार्य हेतु डॉ० मनोहर शर्मा की सेवाए प्राप्त करके हमे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है, जिसके लिए आप हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं ।

प्रस्तुत प्रकाशन को सफल बनाने मे सर्वश्री जेठमल जी सा सेठिया, जुगराज जी सा सेठिया, भीखणचन्द जी सा भसाली, कन्हैयालाल जी सा. मालू, भवरलाल जी सा बैद एव पीरदान जी सा पारख आदि सज्जनो का हमे विशेष प्रोत्साहन एव सहयोग प्राप्त हुआ है, जिसके लिए हृदय से आभार स्वीकार किया जाता है ।

इन प्रवचनो को प्रख्यात आशुलिपिक श्रीमान् धर्मपाल जी मेहता (अजमेर) नें लिपिवद्ध किया है, जिसके लिए आप हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं ।

परम श्रद्धेय आचार्यश्री जी म. सा. के प्रवचन सदैव शास्त्र-सम्मत एव साधु-भाषा मे ही होते हैं परन्तु फिर भी इनके प्रकाशन, सम्पादन एव मुद्रणादि मे यदि कोई त्रुटि रह गई है तो उसके लिये हमारी ओर से क्षमा-प्रार्थना की जाती है ।

केशरीचन्द सेठिया

मत्री

श्री साधुमार्गी जैन बीकानेर श्रावक सघ

बीकानेर (राजस्थान)

वीकानेर

दि० २८-६-७३

प्रस्तावना

ससार का प्रत्येक प्राणधारी सुख चाहता है और दु ख से दूर भागता है। सुखी होना उसका परम लक्ष्य है। इसके लिये वह पूर्ण प्रयत्न करता है, साधन-सामग्री जुटाता रहता है, फिर भी लक्ष्य सिद्धि मे असफल ही रह जाता है। इस स्थिति का मूल कारण है—आत्म-विस्मृति।

इस आत्म-विस्मृति के कारण—मैं कौन हू, मेरा क्या स्वरूप है, मुझे क्या प्रयत्न करना है और कौन-सा मार्ग मेरे लिये हितकर तथा सुखदायक है, इन बातो का उसे भान तक नही होता है। वह पर-पदार्थो मे राग करता है और उनसे सुख पाने की चेष्टा करता है। लेकिन जब उनसे सुख प्राप्त नही होता है तो वह उनसे द्वेष करने लगता है। ये दोनो अन्योन्याश्रित है और इन दोनो के आश्रय से प्राणी अत्यधिक चचल होकर ससार मे परिभ्रमण करता रहता है।

सभी जीने की इच्छा रखते है। यह इच्छा केवल मनुष्य मे ही नही, सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवो तक मे भी पाई जाती है। वे भी जीवित रहना चाहते है। परन्तु उनकी दृष्टि वर्तमान दैहिक-जीवन से आगे नही बढती है और वे आगे या पीछे के जीवन के बारे मे कुछ सोच ही नही सकते हैं। परिणामत दु ख-निवृत्ति और सुख-प्राप्ति की अभिलाषा होने पर भी वे हेयोपादेय का विवेक न होने से अपने-अपने क्षेत्र सबधी सुख-दु ख भोगते रहते है।

इतना होने पर भी यह तो निर्विवाद है कि प्रत्येक प्राणी इस स्थिति से छुटकारा पाने के लिये लालायित रहता है। आध्यात्मिक ज्ञान-ज्योति की लघुतम किरण सदैव उसके अतरग को प्रकाशित

करती रहती है, जिससे वह किसी भी विकटतम स्थिति मे हेयोपादेय के विवेक द्वारा मोहोन्माद को उपशात करने के प्रयत्न मे जुट जाता है।

इस प्रकार जीने की इच्छा, सुखाभिलाषा और दुःख के प्रतिवाद की भावना मे ही आध्यात्मिकता का बीज निहित है। इस आध्यात्मिक उत्कर्ष के द्वारा ही व्यक्ति बहिर्मुखता एव वासनाओ से छूट कर शुद्ध चित् रूप आत्म-स्वरूप की ओर अग्रसर होता है। यही यथार्थ धर्म है। इसके विकासोन्मुखी या विकसित रूप द्वारा ही समग्र सचेतन प्राणधारियो की प्रगति को आका जा सकता है।

समस्त प्राणधारियो मे मानव-जीवन का महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट स्थान है। उसकी अपनी मौलिक विशेषताये है, जो अन्य प्राणधारियो मे नही पाई जाती हे। मनुष्य-जाति मे ही ऐसी विकास शक्ति है कि वह आध्यात्मिकता की अनुभूति और उसकी पूर्ण स्थिति प्राप्त करने की दिशा मे प्रगति कर सकती है। उस विकास-शक्ति मे कुछ ऐसी भी विचित्रता है कि कभी-कभी विकृत होकर वह उसे विपरीत दिशा मे ले जाती है, जिससे कि वह पशु से भी निकृष्ट मालूम होती है। फिर भी एक बात निश्चित है कि आध्यात्मिक-वृत्ति की पूर्णता मानवीय-जीवन मे ही सम्भव है। आध्यात्मिक विकास ही वास्तव मे मानवता का मूल है।

आध्यात्मिक पवित्रता को प्राप्त करना ही मानव-जीवन का लक्ष्य है। आत्म-परकता का सिद्धात ही उसके पृथक् अस्तित्व का मूलाधार है। मानव केवल भौतिक सपत्ति से ही सतुष्ट नही हो सकता है। सच्चा ऐश्वर्य आत्मिक है, भौतिक नही है। उसका उद्देश्य आत्म साक्षात्कार करना है। यही स्वतत्रता है। असीम स्वतत्रता मे मुक्ति है।

शरीर, मस्तिष्क और आत्मा इन तीनो के स्वाभाविक सामजस्य के निर्वाह से व्यक्ति सुखी हो सकता है। लेकिन आज के युग मे आध्यात्मिक मूल्यो को भुला कर हम मस्तिष्क की उपलब्धियो पर अधिक जोर देने लगे है। इसी कारण हम दुखी है। हमारी आत्मिक

शक्तियां कम होती जा रही है तथा मस्तिष्क की उपलब्धियो का अनुपात भयोत्पादक सीमा तक पहुँच गया है। प्रत्यक्षत हम पृथ्वी और आकाश को अपने अधिकार मे मानते-से है, परमाणु और नक्षत्रो के रहस्य को समझने का दावा करते हैं किन्तु आशकाओ से घिरे हुए है। अत निश्चय ही कुछ ऐसा है, जो हम से छूट गया है।

आश्चर्यजनक वैज्ञानिक आविष्कारो के कारण अनेक लोगो का दृष्टिकोण हो गया है कि भौतिक ही सत्य है। प्रयोगो द्वारा सिद्ध न की जा सकने वाली स्थापनाएं सही नही है। इसी प्रकार दुर्भाग्यवश विज्ञान की उपलब्धियो से आकृष्ट हमारे युग के कुछ नेता मानव को एक विशुद्ध यात्रिक, भौतिक और स्वय-चालित इच्छाओ से निर्मित प्राणी समझते हैं। वे मानव की भौतिक प्रवृत्तियो पर तो जोर देते है, किन्तु उसके अन्तस् मे उपस्थित उच्चतर पवित्रता को भूले-से लगते हैं। हमारे युग का सबसे भयकर रोग है—आस्थाहीनता, जिससे हम आध्यात्मिक रूप से विस्थापित है और हमारी सास्कृतिक जडे उखड चुकी है।

अपने भौतिक वातावरण को काबू मे रखने की हमारी असीमित क्षमता से भी अधिक महत्त्वपूर्ण स्वय को जानना और स्वय के साथ सम्बन्ध रखना है। विवेक की उपस्थिति ही हमारी मानवता की 'गारटी' नही है। मानव बनने के लिये हमे विवेक के अतिरिक्त किसी और वस्तु की भी आवश्यकता है। मात्र विज्ञान को ही सभ्यता का आधार नही बनाया जा सकता क्योकि वह सुदृढ नीव का निर्माण नहीं कर सकता है। हमारी वैज्ञानिक उपलब्धिया हमारे शारीरिक स्वास्थ्य, समृद्धि और अवकाश मे सहायक हो सकती है लेकिन हम उनका उपयोग क्या-कैसा कर रहे है ?

सभाव्य विनाश को दूर करने के लिये आवश्यक है कि हम अपने आप मे जीना सीखे। इसके लिये निश्चय ही आध्यात्मिकता की खोज करना होगा, मानवीय व्यक्तित्व और व्यक्तित्व के कारण-भूत

तत्त्व का समादर करना होगा, स्वभाव मे साहसिक रूप से व्याप्त मानवता की भावना को पाना होगा और मानव को उसके अतस् की चेतना की ओर लौटना होगा। मानवीय चेतना का ध्यान रखना आवश्यक और अनिवार्य है। इस स्थिति मे हम अधकार से प्रकाश मे पहुँचते है। जब आत्मा अपनी ही गहराइयो मे अपने जीवन और सम्पूर्ण यथार्थ के आधार को प्राप्त कर लेती है, उस समय उसकी अनुभूति और आनद को किसी भी भाषा मे व्यक्त करना असम्भव है।

'प्राणीमात्र से प्रेम करो' ऐसा कहना और सुनना सुन्दर प्रतीत होता है किन्तु प्रेम करने की क्षमता अर्जित करना अत्यन्त कठिन काम है। आध्यात्मिक जीवन का विकास ही वह बल है, जो प्राणीमात्र से प्रेम करने की क्षमता प्राप्त करा सकता है। सत्य और ईमानदारी, पवित्रता और गभीरता, दया और क्षमा जैसे गुण आत्मिक बोध और निस्पृहता से उत्पन्न होते है और इनके द्वारा ही आध्यात्मिक परिवर्तन सम्भव है। जब तक हमारी वासनाओ और अभिलाषाओ का हम पर शासन है, तब तक हम पडौसी ही क्या, प्राणीमात्र का अपमान करते रहेगे, उन्हे शाति से नही रहने देगे और अपनी हिसात्मक प्रवृत्तियो, लोलुपता एव ईर्ष्या आदि से ग्रस्त रहेगे। आत्मिक अनु-भूति से शाति और जीवन-सौख्य की प्राप्ति होगी, 'आत्मवत् सर्व-भूतेषु' की भावना का सही रूप मे प्रदर्शन होगा।

हम जिस ससार मे अपने जीवन का निर्वाह कर रहे है, उसमे तीव्र वैमनस्य और उथल-पुथल है। विश्व-युद्धो और उनसे उत्पन्न अराजकता का कारण भी यही है कि युद्धो से मानव शिक्षा ग्रहण नही कर सका। वैज्ञानिक उपलब्धियो से दिग्भ्रात होकर उसने उन आध्यात्मिक मूल्यो की ओर ध्यान देना बद-सा कर दिया है।

विज्ञान आध्यात्मिकता का प्रतिपक्षी नही है। विज्ञान धर्म का विरोध नही करता है। लेकिन उसके प्रस्तुतीकरण का रूप और उससे प्राप्त परिणाम भयावह अवश्य है। विज्ञान के परिणामो को

अमगलकारी उद्देश्यो की पूर्ति मे लगाने से विज्ञान की आत्मा को ही दूषित कर दिया गया है । वैज्ञानिक शिक्षा का उद्देश्य मानव के दृष्टिकोण और रुचि को अधम व भौतिक कार्यों तक सीमित कर देना नही है । विज्ञान की ठीक समझ आत्मा के धर्म की सहायक है । विज्ञान स्वय-चालित प्रक्रिया मात्र नही है और न ऐतिहासिक परिवर्तन का अज्ञात कारण । विज्ञान का विकास उन लोगो की बुद्धि का परिणाम है, जो ज्ञान, कौशल और मूल्याकन की क्षमता रखते है । मानव परमाणु का भजन इसीलिये कर सका कि उसके भीतर परमाणु से 'श्रेष्ठतर' का अस्तित्व है । भौतिक उपलब्धिया तो इसकी साक्षी मानी जायेगी कि मानव-चेतना क्या कुछ कर सकती है और क्या-क्या प्राप्त कर सकती है ।

धर्म और विज्ञान दोनो प्रकृति की एकता की पुष्टि करते है । प्रकृति की प्रक्रियाओ का अध्ययन करते समय हमे उनकी व्यवस्था और सामजस्य प्रभावित करते है और आत्मा के अस्तित्व पर विश्वास होता है । विज्ञान प्रयोग-सिद्ध है, अनुभव-सिद्ध है । वह रूढिवादी नही है, उदार है । धर्म भी प्रयोग और अनुभव-सिद्ध है । धार्मिक सत्यो का आधार है अनुभव परन्तु भौतिक ससार का नही, वरन् आत्मिक यथार्थ का अनुभव । विज्ञान के सिद्धात भी अनुभव द्वारा प्रमाणित होते है । अनुभव का क्षेत्र केवल ऐन्द्रिय-अनुभव तक सीमित नही है । आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि भी अनुभव है । वैज्ञानिक सत्य के समान धार्मिक सत्य को भी अनुभव द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है । मानव स्वभाव निर्विकार स्थिति प्राप्त कर ले तो आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त हो जाती है ।

वर्तमान युग विकास का युग कहलाता है । परन्तु विकास के सही अर्थ को न समझ कर विकास की बाते होते देख कर विस्मय होता है । बाह्य सपदा की वृद्धि वास्तविक विकास नही है । लेकिन आज विकास से यही अर्थ लिया जाता है । विकास के दो प्रकार है–

शारीरिक और मानसिक। शारीरिक विकास तो मनुष्यो मे ही नही, पशु-पक्षियो तक मे भी देखा जाता है। खान-पान, स्थान आदि की पूरी सुविधा मिले और चिन्ता-भय न रहे तो पशु-पक्षी भी बलवान और पुष्ट हो जाते है। लेकिन मनुष्यो और पशु-पक्षियो के शारीरिक विकास का अतर ध्यान देने योग्य है कि मनुष्य का शारीरिक विकास केवल खान-पान और रहन-सहन आदि की पूरी सुविधा और निश्चिन्तता से ही सिद्ध नही हो सकता है। मनुष्य के शारीरिक विकास के पीछे पूरा बुद्धि-योग हो, तभी वह समुचित रूप से सिद्ध हो सकता है अर्थात् मनुष्य का पूर्ण और समुचित विकास (शारीरिक और मानसिक) व्यवस्थित और जागृत बुद्धियोग की अपेक्षा रखता है। मानव-जाति की महत्त्वपूर्ण विशेषता यही है कि उसे साहसिक भाव को धारण करने या पैदा करने की सामर्थ्य या योग्यता प्राप्त है, जो विकास का, असाधारण विकास का मुख्य साधन है। इसी मुख्य साधन को विकसित करने के लिये आध्यात्मिक-आलोक की ओर अग्रसर होने की महती आवश्यकता है और उसी की साधना मे मानव-जीवन की कृतार्थता है।

लेकिन आज मानसिक विकास के मूलाधार बौद्धिक-आध्यात्मिक चिन्तन की उपेक्षा कर ससार को ही सब कुछ माना जा रहा है तो फिर विकास हो कैसे ? बिना बीज के अकुर की उत्पत्ति नही होती है। आखो मे पदार्थो को देखने की शक्ति न हो तो उन्हे देखा नही जा सकता है। यह ससारोन्मुखी वृत्ति अर्थात् इन्द्रियो से दिखाई देने वाले नाशवान् मनोहारी दृश्यो के प्रति आकर्पित होना प्रेयमार्ग है। इसी से मानवीय मस्तिष्क मे विकृति है और आत्मा रोगग्रस्त है। शाश्वत के प्रति आस्थाहीनता ही विषम व्याधि है। यही विश्व मे अशाति का कारण है एव यही विषमता की जड है।

आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है। यदि वह अपनी शक्तियो को न देख कर केवल बाह्य आकृतियो से उल्लसित होती है, बाह्य दृष्टि ही उसके

लिये मूल्यांकन की कसौटी है एव नाशवान् तत्त्वो की ओर आकर्षण है तो उसे सत्-चित्-आनदघन की अनुभूति नही हो सकती है ।

आध्यात्मिक चिन्तन-मनन और आत्मा तथा परमात्मा की चर्चा-वार्ता आदि विषय मात्र धर्मस्थानो तक ही सीमित नही हैं। ये तो तिल मे तेल की तरह सार्वकालिक है, प्रतिक्षण के जीवन के अग है। इनके स्वर को सुनिये। आध्यात्मिक-चिन्तन सर्वजनहिताय है, सब जीवो के कल्याण के लिये है। यह सबके मन को पवित्र बना कर अन्तर्ज्योति जगाता है। आध्यात्मिक जागृति का कार्य वस्तुत श्रेष्ठतम कार्य है परन्तु इसके लिये वही व्यक्ति तत्पर हो सकता है, जो जिज्ञासु है।

व्यक्ति के जीवन की आधारशिला आध्यात्मिक-परम्पराये है। भौतिक उपलब्धिया व्यक्ति के शारीरिक स्वास्थ्य, भौतिक समृद्धि और अवकाश की अभिवृद्धि मे सहायक हो सकती है लेकिन इतने मात्र से ही व्यक्ति का अस्तित्व सार्थक नही माना जा सकता है। उसके लिये आवश्यकता है—आत्मानुशासन की, आत्मकेन्द्रित होने की और आध्यात्मिक प्रवृत्ति की।

पूर्वोक्त वक्तव्य का आधार परम श्रद्धेय आचार्यश्री जी म० सा० के प्रवचन है। अपनी बौद्धिक क्षमता से जिस रूप मे और जितने अशो मे आचार्यश्री जी के भावो और विचारो को समझ पाया हूँ, उन्हे एक सूत्रधार की तरह अपने शब्दो मे यहा प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। परम पूज्य आचार्यश्री जी के प्रवचनो के भावो और विचारो को अपने शब्दो मे अकित करना दुस्साहस ही माना जायेगा और है भी। परन्तु इस प्रयास का कारण है—

अल्पश्रुत श्रुतवता परिहासधाम, त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिल किल मधौ मधुर विरौति, तच्चाम्र-चारुकलिका- निकरैकहेतु ॥

'आध्यात्मिक आलोक' मे सकलित सभी प्रवचन, विभिन्न प्रसगो की व्याख्या करते है परन्तु इनका समग्र-स्वर आध्यात्मिक विकास,

आध्यात्मिक उपलब्धि और 'मृत्योर्मा अमृतं गमय' के संदेश को मुखरित करता है।

पुस्तक के आद्योपान्त पढने से यही अनुभव होता है मानो वक्ता की वाणी ही श्रवण कर रहे है। इसमें आचार्यश्री जी के भाव एव भाषा-शैली की सुरक्षा का पूर्णरूपेण ध्यान रखा गया है।

प्रस्तावना-लेखन के माध्यम से आचार्यश्री जी म० सा० के चरणारविन्दो मे श्रद्धा प्रकट करने का सुअवसर प्रदान करने के लिये श्री साधुमार्गी जैन बीकानेर श्रावक सघ, बीकानेर का कृतज्ञ हू।

बीकानेर
स० २०३०, आश्विन शुक्ला द्वितीया
दि० २८-९-७३

विनयावनत,
देवकुमार जैन

सम्पादकीय

'आध्यात्मिक आलोक' मे परम पूज्य आचार्यश्री नानालाल जी म सा के बीकानेर-चातुर्मास की अवधि मे दिये गये प्रवचनो मे से ६ प्रवचन सकलित किये गये हैं । इन सब प्रवचनो का मूलाधार आध्यात्मिक-जीवन की अनुभूति अथवा समता-दर्शन का प्रकाशमान स्वरूप है । अत पुस्तक का नामकरण तदनुसार ही निर्णीत हुआ है ।

सन्त-महात्माओ के प्रवचनो का सम्पादन एक विशेष उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य है क्योकि उनका प्रत्येक वाक्य अर्थगभीर एव अनुभूतिपूर्ण होता है । ऐसी परिस्थिति मे इन प्रवचनो का सम्पादन करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि परम श्रद्धेय आचार्यश्री के विचार ही नही, अपितु आपकी भाषा-शैली भी यथावत् ही रहे । फिर भी प्रस्तुत पुस्तक मे यदि कोई त्रुटि रह गई है तो उसके लिए विनम्र भाव से क्षमा-याचना की जाती है ।

बीकानेर (राजस्थान) मनोहर शर्मा
श्रीकृष्णजन्माष्टमी, विक्रम स० २०३०

अनुक्रमणिका

आध्यात्मिक आलोक

सुख-प्राप्ति का साधन

श्री श्रेयास जिन अतरजामी, आतमरामी नामी रे,
अध्यातम मत पूरण पामी, सहज मुक्ति गति गामी रे।

श्रेयासनाथ परमात्मा के चरणो मे श्रेयमार्ग की ससिद्धि की भावना और जिज्ञासा के साथ प्रार्थना की पक्तियो के उच्चारण का प्रसग आया है। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सर्वशक्ति-सम्पन्न परमात्मा की जब आत्मा के समक्ष भावो की दृष्टि से अभिव्यक्ति होती है, तब वे मानो अन्तर्यामी बन जाते है और वर्षो से सोई हुई आतरिक चेतना सक्रिय होकर उठने की स्थिति मे आती है।

इस आत्मस्वरूप को समझाने के लिए वीतराग-वाणी के माध्यम से विविध रूप मे प्रयास किए जा रहे हैं, ताकि इस प्रयास को हम जीवन मे मूर्त्तरूप देकर अभीष्ट सिद्धि प्राप्त कर सकें।

आज का यह विराट विश्व अनेक प्रकार की उलझनो मे उलझा हुआ है और अनेक आतरिक स्थितियो मे अपनी अन्तश्चेतना का हनन कर रहा है। इन विकट परिस्थितियो मे यदि कोई प्रकाशस्तम्भ है, यदि कोई अवलबन है और यदि इस जीवन को आगे बढाने के लिए कोई आदर्श हैं तो वे सिद्ध परमात्मा ही है। उन परमात्मा के स्वरूप को हम दूर से न देखे परन्तु अपनी अतरग स्थिति मे देखें। आश्चर्य इस बात का है कि उस सन्निकट स्वरूप को भी आत्मा देख नही पा रही है और आत्मा से कोसो दूर रहे तत्त्व को वह अपने समीप मान रही है। यह बडी विचित्र दशा है।

बधुओ ! जिस घर मे पवित्र निधि भरी हुई है और जिसके

लिए बाहर जाने की आवश्यकता ही नही है, उस पर तो व्यक्ति दृष्टि नही डाल रहा है और जहा निधि नही है तथा निधि का सिर्फ भ्रम हो रहा है, उसके पीछे वह मृग की तरह भटकता है। जैसे कस्तूरी-मृग को अपनी नाभि मे से कस्तूरी की सुगध आती है, तब उसका मन छटपटाने लगता है कि यह सुगध बडी अच्छी है, यह कहा से आ रही है ? उस वक्त वह सोचता है कि इस जगल मे अवश्य ही कोई खान होगी, जहा से यह सुगध आ रही है। मैं अपनी शक्ति लगाकर उस खान को खोज लू और तब झाडियो मे इधर-उधर छलाग लगाता हुआ वह मृग जगल मे भटकता है। परन्तु झाडियो अथवा पहाडियो के बीच मे वह सुगध नही मिल पाती। वह नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे अथक परिश्रम करके आखिर मे थक जाता है और म्लानता का अनुभव करने लगता है। परन्तु फिर भी उसको सुगध की खान नही मिल पाती। उस मृग को इस बात का भान नही है कि कस्तूरी की वह सुगध पहाडो की झाडियो या चट्टानो मे नही है, अपितु अपने मे ही है। इस ज्ञान के अभाव मे अपने मे ही रहने वाली कस्तूरी को वह प्राप्त नही कर पाता और उसकी तलाश मे ही उसका जीवन समाप्त हो जाता है। क्या यही अवस्था आज के मानव की भी नही हो रही है ?

मानव की आत्मा आतरिक सुख की सुगध प्राप्त करने के लिए यदा-कदा वाहर के भौतिक पदार्थों के आकर्षण से प्रभावित होती है और सोचती है कि ऐसे सुख की महक इनसे मिल जाएगी। अत उसको ढूढने के लिए वह आकाश-पाताल एक कर रहा है। उसने वन प्रदेश ढूढे, समुद्र की गहराई मे वह पहुचा, परन्तु उसे वह नही मिली। फिर मानव ने सोचा कि आकाश मे उडू। ऐसा सोचकर ही वह नही रहा और वह उड चला। वह तथाकथित चन्द्रलोक और मगल आदि के ऊपर पहुचने के भरसक प्रयत्न कर रहा है। लेकिन आप यह सुनिश्चित रूप मे मान कर चलिए कि भौतिक दृष्टि से यह वैज्ञानिक उपलब्धि हो सकती है, परन्तु आत्मा की वह पवित्र महक, वह सुगध उसे कभी

नहीं मिल सकती है ।

आज का चिंतक, आज का विचारक और आज का युवक वैज्ञानिक उपलब्धियों को देखकर चकित हो रहा है और सोच रहा है कि विज्ञान कहा से कहा पहुच गया। आज विज्ञान ने दुनिया को नाप लिया है और सोचता है कि इस ससार मे वही सब कुछ है। आत्मा और परमात्मा की वार्ता तो धर्मस्थानो तक ही सीमित है। लोग सोचते हैं कि हमको तो विज्ञान की ओर बढने मे ही सुख मिलेगा, धर्मस्थानो की ओर जाने से नहीं।

इस प्रकार की भ्रात धारणा एव गलत विश्वास आधुनिकता के लक्षणो के साथ-साथ आज के वायुमण्डल मे व्याप्त-से हैं। यही कारण है कि आज के मानव को जिस महत्त्वपूर्ण स्थान पर योगदान करना चाहिए, वहा तो वह नही कर रहा है और जहा शक्ति के उपयोग की आवश्यकता ही नही, वहा वह शक्ति से भी अधिक कार्य कर रहा है। वह सोच रहा है कि मुझ को अमुक स्थान पर कुछ-न-कुछ मिलेगा। परन्तु उसे इस प्रकार कुछ भी सुख-शाति प्राप्त होने वाली नही है।

आज जितना विज्ञान का विकास हुआ है, क्या मानव को उतनी आत्मशाति भी मिली ? या केवल अशाति ही प्राप्त हुई ? आप अपने अन्त करण को टटोलिए। आप कस्तूरी-मृग की तरह भ्रमित न होइए। मृग तो पशु कहलाता है। उसमे मानवीय बुद्धि का अभाव है। आत्म-शक्ति के समान होने पर भी विकास के योग्य जो बौद्धिक माध्यम होना चाहिए, वह उसके पास नही है। वह मानव के पास ही है। फिर भी आज का मानव इसका दुरुपयोग कर रहा है। वह इसके सदुपयोग की तरफ लक्ष्य नही दे रहा है।

जैसे कही पर आग लगी है और आग को बुझाने के लिए कोई व्यक्ति हल्ला मचा रहा है कि यहा आग लग रही है। वह उसको बुझाने के लिए पानी की खोज भी करता है। किन्तु वह नाचता-कूदता आग के पास जाता है और उसे शात करने के लिए पानी का प्रयोग तो नही

लिए बाहर जाने की आवश्यकता ही नही है, उस पर तो व्यक्ति दृष्टि नही डाल रहा है और जहा निधि नही है तथा निधि का सिर्फ भ्रम हो रहा है, उसके पीछे वह मृग की तरह भटकता है। जैसे कस्तूरी-मृग को अपनी नाभि मे से कस्तूरी की सुगध आती है, तब उसका मन छटपटाने लगता है कि यह सुगध बडी अच्छी है, यह कहा से आ रही है ? उस वक्त वह सोचता है कि इस जगल मे अवश्य ही कोई खान होगी, जहा से यह सुगध आ रही है। मैं अपनी शक्ति लगाकर उस खान को खोज लू और तब झाडियो मे इधर-उधर छलाग लगाता हुआ वह मृग जगल मे भटकता है। परन्तु झाडियो अथवा पहाडियो के बीच मे वह सुगध नही मिल पाती। वह नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे अथक परिश्रम करके आखिर मे थक जाता है और म्लानता का अनु-भव करने लगता है। परन्तु फिर भी उसको सुगध की खान नही मिल पाती। उस मृग को इस बात का भान नही है कि कस्तूरी की वह सुगंध पहाडो की झाडियो या चट्टानो मे नही है, अपितु अपने मे ही है। इस ज्ञान के अभाव मे अपने मे ही रहने वाली कस्तूरी को वह प्राप्त नही कर पाता और उसकी तलाश मे ही उसका जीवन समाप्त हो जाता है। क्या यही अवस्था आज के मानव की भी नही हो रही है ?

मानव की आत्मा आतरिक सुख की सुगध प्राप्त करने के लिए यदा-कदा बाहर के भौतिक पदार्थो के आकर्षण से प्रभावित होती है और सोचती है कि ऐसे सुख की महक इनसे मिल जाएगी। अत उसको ढूढने के लिए वह आकाश-पाताल एक कर रहा है। उसने वन प्रदेश ढूढे, समुद्र की गहराई मे वह पहुचा, परन्तु उसे वह नही मिली। फिर मानव ने सोचा कि आकाश मे उडू। ऐसा सोचकर ही वह नही रहा और वह उड चला। वह तथाकथित चन्द्रलोक और मगल आदि के ऊपर पहुचने के भरसक प्रयत्न कर रहा है। लेकिन आप यह सुनिश्चित रूप से मान कर चलिए कि भौतिक दृष्टि से यह वैज्ञानिक उपलब्धि हो सकती है, परन्तु आत्मा की वह पवित्र महक, वह सुगध उसे कभी

नही मिल सकती है।

आज का चिंतक, आज का विचारक और आज का युवक वैज्ञानिक उपलब्धियो को देखकर चकित हो रहा है और सोच रहा है कि विज्ञान कहा से कहा पहुच गया। आज विज्ञान ने दुनिया को नाप लिया है और सोचता है कि इस ससार मे वही सब कुछ है। आत्मा और परमात्मा की वार्ता तो धर्मस्थानो तक ही सीमित है। लोग सोचते हैं कि हमको तो विज्ञान की ओर बढने मे ही सुख मिलेगा, धर्मस्थानो की ओर जाने से नही।

इस प्रकार की भ्रात धारणा एव गलत विश्वास आधुनिकता के लक्षणो के साथ-साथ आज के वायुमण्डल मे व्याप्त-से हैं। यही कारण है कि आज के मानव को जिस महत्त्वपूर्ण स्थान पर योगदान करना चाहिए, वहा तो वह नही कर रहा है और जहा शक्ति के उपयोग की आवश्यकता ही नही, वहा वह शक्ति से भी अधिक कार्य कर रहा है। वह सोच रहा है कि मुझ को अमुक स्थान पर कुछ-न-कुछ मिलेगा। परन्तु उसे इस प्रकार कुछ भी सुख-शाति प्राप्त होने वाली नही है।

आज जितना विज्ञान का विकास हुआ है, क्या मानव को उतनी आत्मशाति भी मिली ? या केवल अशाति ही प्राप्त हुई ? आप अपने अन्त करण को टटोलिए। आप कस्तूरी-मृग की तरह भ्रमित न होइए। मृग तो पशु कहलाता है। उसमे मानवीय बुद्धि का अभाव है। आत्म-शक्ति के समान होने पर भी विकास के योग्य जो बौद्धिक माध्यम होना चाहिए, वह उसके पास नही है। वह मानव के पास ही है। फिर भी आज का मानव इसका दुरुपयोग कर रहा है। वह इसके सदुपयोग की तरफ लक्ष्य नही दे रहा है।

जैसे कही पर आग लगी है और आग को बुझाने के लिए कोई व्यक्ति हल्ला मचा रहा है कि यहा आग लग रही है। वह उसको बुझाने के लिए पानी की खोज भी करता है। किन्तु वह नाचता-कूदता आग के पास जाता है और उसे शात करने के लिए पानी का प्रयोग तो नही

लिए बाहर जाने की आवश्यकता ही नही है, उस पर तो व्यक्ति दृष्टि नही डाल रहा है और जहा निधि नही है तथा निधि का सिर्फ भ्रम हो रहा है, उसके पीछे वह मृग की तरह भटकता है। जैसे कस्तूरी-मृग को अपनी नाभि मे से कस्तूरी की सुगध आती है, तब उसका मन छटपटाने लगता है कि यह सुगध बडी अच्छी है, यह कहा से आ रही है ? उस वक्त वह सोचता है कि इस जगल मे अवश्य ही कोई खान होगी, जहा से यह सुगध आ रही है। मैं अपनी शक्ति लगाकर उस खान को खोज लू और तब झाडियो मे इधर-उधर छलाग लगाता हुआ वह मृग जगल मे भटकता है। परन्तु झाडियो अथवा पहाडियो के बीच मे वह सुगध नही मिल पाती। वह नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे अथक परिश्रम करके आखिर मे थक जाता है और म्लानता का अनुभव करने लगता है। परन्तु फिर भी उसको सुगध की खान नही मिल पाती। उस मृग को इस बात का भान नही है कि कस्तूरी की वह सुगध पहाडो की झाडियो या चट्टानो मे नही है, अपितु अपने मे ही है। इस ज्ञान के अभाव मे अपने मे ही रहने वाली कस्तूरी को वह प्राप्त नही कर पाता और उसकी तलाश मे ही उसका जीवन समाप्त हो जाता है। क्या यही अवस्था आज के मानव की भी नही हो रही है ?

मानव की आत्मा आतरिक सुख की सुगध प्राप्त करने के लिए यदा-कदा बाहर के भौतिक पदार्थों के आकर्षण से प्रभावित होती है और सोचती है कि ऐसे सुख की महक इनसे मिल जाएगी। अत उसको ढूढने के लिए वह आकाश-पाताल एक कर रहा है। उसने वन प्रदेश ढूढे, समुद्र की गहराई मे वह पहुचा, परन्तु उसे वह नही मिली। फिर मानव ने सोचा कि आकाश मे उडू। ऐसा सोचकर ही वह नही रहा और वह उड चला। वह तथाकथित चन्द्रलोक और मगल आदि के ऊपर पहुचने के भरसक प्रयत्न कर रहा है। लेकिन आप यह सुनिश्चित रूप से मान कर चलिए कि भौतिक दृष्टि से यह वैज्ञानिक उपलब्धि हो सकती है, परन्तु आत्मा की वह पवित्र महक, वह सुगध उसे कभी

नही मिल सकती है ।

आज का चिंतक, आज का विचारक और आज का युवक वैज्ञानिक उपलब्धियो को देखकर चकित हो रहा है और सोच रहा है कि विज्ञान कहा से कहा पहुच गया। आज विज्ञान ने दुनिया को नाप लिया है और सोचता है कि इस ससार मे वही सब कुछ है। आत्मा और परमात्मा की वार्ता तो धर्मस्थानो तक ही सीमित है। लोग सोचते हैं कि हमको तो विज्ञान की ओर बढने मे ही सुख मिलेगा, धर्मस्थानो की ओर जाने से नही ।

इस प्रकार की भ्रात धारणा एव गलत विश्वास आधुनिकता के लक्षणो के साथ-साथ आज के वायुमण्डल मे व्याप्त-से है। यही कारण है कि आज के मानव को जिस महत्त्वपूर्ण स्थान पर योगदान करना चाहिए, वहा तो वह नही कर रहा है और जहा शक्ति के उपयोग की आवश्यकता ही नही, वहा वह शक्ति से भी अधिक कार्य कर रहा है । वह सोच रहा है कि मुझ को अमुक स्थान पर कुछ-न-कुछ मिलेगा । परन्तु उसे इस प्रकार कुछ भी सुख-शाति प्राप्त होने वाली नही है ।

आज जितना विज्ञान का विकास हुआ है, क्या मानव को उतनी आत्मशाति भी मिली ? या केवल अशाति ही प्राप्त हुई ? आप अपने अन्त करण को टटोलिए। आप कस्तूरी-मृग की तरह भ्रमित न होइए । मृग तो पशु कहलाता है। उसमे मानवीय बुद्धि का अभाव है । आत्म-शक्ति के समान होने पर भी विकास के योग्य जो बौद्धिक माध्यम होना चाहिए, वह उसके पास नही है । वह मानव के पास ही है। फिर भी आज का मानव इसका दुरुपयोग कर रहा है। वह इसके सदुपयोग की तरफ लक्ष्य नही दे रहा है ।

जैसे कही पर आग लगी है और आग को बुझाने के लिए कोई व्यक्ति हल्ला मचा रहा है कि यहा आग लग रही है। वह उसको बुझाने के लिए पानी की खोज भी करता है । किन्तु वह नाचता-कूदता आग के पास जाता है और उसे शात करने के लिए पानी का प्रयोग तो नही

करता, लेकिन उसमे ऐसा ईधन डालता है, जिससे आग शात होने के बजाय और भी भडक उठती है। ऐसा करके वह व्यक्ति अपनी बुद्धि का, शक्ति का सदुपयोग कर रहा है या दुरुपयोग कर रहा है ? इस तरह का कार्य करने वाले के लिए आप क्या कहेगे ? परन्तु वही मनुष्य यदि एकात के क्षणो मे बैठ कर अपना, स्वय का चिन्तन करे, निरीक्षण करे और सोचे कि मै क्या कर रहा हू, मैं ईधन डाल कर आग को प्रज्वलित कर रहा हू या उसे बुझाने का उपाय कर रहा हू ? उस स्थिति मे मानव को अपनी दशा अत्यत दयनीय ही प्रतीत होगी भले ही मृग की तो पशु कह कर उपेक्षा कर सकते है, परन्तु आज के मानव को देखिये कि वह कैसी विपम परिस्थिति मे चल रहा है। वह अपनी मानवता को भुला कर दानवता का ताडव नृत्य कर रहा है। ऐसे मानव के लिए आध्यात्मिक-चिन्तन ही सहायक हो सकता है। इधर-उधर भटकने से शाति प्राप्त नही हो सकती।

मै प्रत्येक भाई-बहिन को सावधानीपूर्वक याद दिलाता हू कि आप इस तथ्य को समझे और आत्मा तथा परमात्मा की सुगध की इन बातो को निरर्थक या केवल वृद्धो के लिए ही न माने। जिनकी अवस्था जर्जरित हो गई है, जो वृद्ध हो गए है और कार्य करने मे समर्थ नही है, वे इस कार्य को करेगे, ऐसी कल्पना भी आप न कीजिए। वे वृद्ध कुछ नही कर पाएगे। यदि आप वस्तुत आत्मिक-सुख और शाति चाहते है तो आत्म-चेतना को दैदीप्यमान बनाना होगा।

आज का मानव इस भौतिक उडान मे न लगता हुआ और इन उडानो को ही उडान न समझता हुआ, जीवन मे वास्तविक सुख की सुगध को ढूढेगा तो इस विषम परिस्थिति मे भी वह सच्चे सुख की खोज कर सकेगा।

आत्मिक स्वरूप को पहिचानने के लिए धर्मस्थान की पावन भूमि मे प्रवेश कीजिए। धर्मस्थान की पावन भूमि ये दीवारे, ये कपाट आदि नही है। वह पावन भूमि तो हृदय है, जिस पर कर्मों के आवरण रूप किवाड लगे

हुए हैं। यदि उन्हे खोलकर आप धर्मस्थान मे प्रवेश करेगे, आत्मा के अदर उस प्रकाश-पु ज को देखने का प्रयास करेगे तो आप अनुभव करेगे कि इस लोक मे उस प्रकाश की नितात आवश्यकता है। आप सोचेगे–अरे, हमने सारी जिन्दगी यो ही खो दी और यही हमारे दु ख का कारण रहा! यदि हम पहिले से ही यानि बाल्यावस्था से ही भीतर की ओर मुड जाते तो इस तथ्य को समझने मे सफल हो सकते थे कि इस जीवन का यदि कोई सारतत्त्व है तो वह आत्मा के शुद्ध स्वरूप की उपलब्धि ही है। इस उपलब्धि के लिए प्रारम्भ से ही हम इस वर्णमाला की ओर बढते तो युवावस्था की ओर बढते-बढते बाह्य विषयो और इन्द्रियो के लुभावने दृश्यो मे न पड कर युवावस्था मे इस दिव्य स्वरूप को प्राप्त कर लेते। परन्तु ऐसा नही हो पाया तो अब यह परिस्थिति तभी बन सकेगी, जब कि आप धर्मद्वार (हृदय) को अन्दर से खोलेगे।

आप वास्तविक धर्म को समझिए। धर्म का सक्षिप्त स्वरूप तो यही है–जो सर्वजनहिताय है, जो सब जीवो के कल्याण के लिए है, जो सबको शाति की सास लेने देता है, सबको आश्रय देता है और सबके मन को पवित्र बना कर अतर्ज्योति जगाता है।

तरुण-वर्ग को यदि सही धर्म का स्वरूप समझ मे आ जाए तो वर्तमान मे बढ रही स्वच्छदता, उच्छृखलता स्वयमेव शात हो जाए। फिलहाल तो वे अपने वर्तमान जीवन मे साथ रहने वाले मन की शक्ति, तन का बल, वाणी की कला और बुद्धि की निधि को सिर्फ इन नाशवान् पदार्थों को बटोरने मे ही लगा रहे है, चद चादी के टुकडो को सग्रह करने मे ही लगा रहे है। परन्तु वे कुछ दिन भले ही ऐसा कर ले, आखिर ये कितने दिन साथ रहने वाले हैं? यदि आपने इन योगो को इस तरफ लगा दिया, इस जीवन की तीन धाराओ (ज्ञान, दर्शन और चारित्र) को अपने पास मे रखा और युवावस्था का योग दे दिया तो अवश्य ही आपका यह वर्तमान जीवन भी स्वर्गीय आनन्द से आप्लावित हो जायेगा।

यह उधार धर्म नही है। यह धर्म सिर्फ वृद्धो के लिए ही नही है। यह तत्त्व तो हर एक प्राणी के लिए है। आज बहुतेरे लोग समझते हैं कि हम जो धर्म-करनी करते है, यह इस जीवन मे नही, आगे के जीवन मे काम मे आएगी। परन्तु मै कहूगा कि यदि आपने अन्दर के कपाट को खोल कर धर्म मे प्रवेश पा लिया तो आप समझ लीजिए कि आपका कल ही नही, आज भी सुन्दर बनेगा। कल के लिए तो आपका सब कुछ सुर-क्षित है ही, परन्तु उसके पहिले आपका यह लोक भी सुखकर बनेगा।

वर्तमान युग मे आप बडे-बडे धनवान देखते है और सोचते हैं कि इनके पास अपार सपत्ति है। हो सकता है कि वे धनवान भी अपनी सपत्ति को असाधारण ही समझते हो, परन्तु अब जरा प्राचीनकाल के इब्ब सेठो की स्थिति पर ध्यान दीजिए। आज के धनपतियो की सपदा उनके वैभव के आगे कुछ भी नही है। इतना धन तो उनको नजर मे भी नही आता था।

ऐसे ही एक प्राचीन इब्ब सेठ के पुत्र जम्बुकुमार ने युवावस्था मे प्रवेश किया। उस समय उसका आठ सुन्दर कन्याओ के साथ सगाई-सम्बन्ध हो चुका था और विवाह का प्रसग सामने था। यह एक ऐसा प्रसग है कि कोई भी व्यक्ति अपना सवरण नही कर सकता। ऊपरी दृष्टि से वह कितना ही चिन्तन करता हो, परन्तु इस रमणीय और लुभावने दृश्य को छोड कर धर्म मे प्रवेश करे, यह तो विरले ही व्यक्तियो के वश की बात है।

उस श्रेष्ठिकुमार ने आचार्य सुधर्मास्वामी के एक ही प्रवचन को सुन कर आत्मिक-प्रकाश प्राप्त कर लिया था और उससे अपनी हृदय-तत्री को झकृत करते हुए वह आचार्य सुधर्मास्वामी के समीप से अपने माता-पिता के चरणो मे पहुचा और उनसे निवेदन करने लगा कि—

हे माता-पिता, मैं अब इन पाचो इन्द्रियो के विषयो मे, मनोहारी विषयो मे रमण नही करना चाहता। ये तो बहुत समय से मेरे साथ लगे हुए हैं, परन्तु मुझे आत्मिक-शाति की उपलब्धि नही हो पाई। मै अज्ञान-

वश कस्तूरी-मृग की तरह जीवन मे भटकता रहा। जब तक मैं उन महात्मा के चरणो मे नही पहुचा था, तब तक तो यही सोच रहा था कि इस जीवन का सुख केवल इन देवागनाओ के तुल्य रमणियों मे ही है। परन्तु आज मेरे भीतर के द्वार खुल गए है और मेरे चिन्तन की धारा बदल गई है। अब मैंने निश्चय कर लिया है कि यदि इस युवावस्था की शक्ति को अन्तश्चेतना मे प्रवेश करने मे लगाऊगा तो मैं इस जीवन मे दिव्य-सुख की प्राप्ति के साथ-साथ परलोक मे भी उत्तम स्थान प्राप्त कर सकता हू। अत अब मैं विवाह आदि कार्यों में उलझना नही चाहता हू।"

अचानक इकलौते पुत्र की इस अलौकिक बात को सुनकर माता-पिता एव परिवार के अन्य सदस्यो को कितना आश्चर्य हुआ होगा और यह बात उन्हे कितनी अटपटी लगी होगी, इसकी कल्पना भी सम्भवत आप अपने मस्तिष्क मे नही कर पाएगे क्योकि वैसी परिस्थिति आने पर ही उसका अनुभव हो सकता है।

पुत्र के वचन सुन कर माता ने कहा, "पुत्र, लाल, जब तूने मेरी कुक्षि से जन्म लिया है तो इस घर का दीपक तू ही है। अत इस घर की व्यवस्था और सतान-वृद्धि करके फिर धर्मस्थान मे प्रवेश करना।"

प्रत्युत्तर मे श्रेष्ठिकुमार ने कहा, "हे माता-पिता, यदि मै इस सासारिक सुखोपलब्धि मे लग गया तो मेरी युवावस्था की सम्पूर्ण शक्ति का व्यय हो जाएगा और फिर मैं इस कार्य को करने मे समर्थ नहीं हो सकूगा। मैं केवल आपके ही घर को दिव्य नही बनाना चाहता, मै तो सारे ससार को प्रकाश-पुज की तरह बनाना चाहता हू। मै अब केवल आपकी सेवा ही नही अपितु प्राणिमात्र की सेवा करना चाहता हू। मैं तो अपने व आपके जीवन की शाति के साथ जगत् के सभी जीवो को भी शाति देने के साकार रूप की कल्पना कर रहा हू। परन्तु यह तभी सभव होगा, जब मैं उसके अनुरूप ही अपने जीवन का ढाचा बना लू। मै उस पथ का राही बनूगा, तभी साध्य की सिद्धि करने मे

समर्थ हो सकूगा ।"

माता-पिता और परिवार के सदस्यो की ओर से उस कुमार को लुभाने के लिए हजार-हजार प्रयत्न किए गए, परन्तु उस तरुण को रोकने मे वे सफल नही हो सके। अततोगत्वा उन्होने यही कहा, "पुत्र, हमारी ओर से तो इस पवित्र कार्य के लिए रोक नही है परन्तु जिन तरुणियो, सुकुमारियो के साथ तुम सगाई-सम्वन्ध मे आवद्ध हो गए हो, उनसे भी अनुमति प्राप्त कर लो । वे यदि राजी-खुशी तुम्हे अनुमति दे दे तो तुम आध्यात्मिक जीवन की खोज हेतु उस पथ पर चलने के लिए स्वतन्त्र हो ।"

उस तरुण ने इस बात को अपनी शक्ति के परीक्षण का समय समझ कर मौन रख लिया । वह सोचता है कि जिस इन्सान को पवित्र अमृत-बिन्दु के स्वाद की अनुभूति हो चुकी हो, उसके लिए खारा पानी कभी भी रुचिकर नही हो सकता । मैं अपनी स्थिति मे दृढ हू ।

इधर माता-पिता ने सोचा कि इन्द्रिय-विषय कुछ ऐसे लुभावने हैं कि पुरुष कितने ही तूफान मचा रहा हो, परन्तु वे सब शात किए जा सकते है। अरे, एक स्त्री भी जिस पुरुष के साथ सम्बधिन हो जाती है, वह भी उसे घर से बाहर नही निकलने देती तो फिर जिसके साथ आठ-आठ स्त्रिया, रमणिया हो, वह हमारा तरुण पुत्र इस बधन से कभी भी नही निकल पाएगा। ऐसा सोच कर माता-पिता ने अपने तरुण पुत्र का विवाह करने का निश्चय कर लिया ?

जब यह प्रस्ताव उन आठो कन्याओ के माता-पिता के पास पहुचा तो वे सोचने लगे कि जिस युवक का सगाई-सम्बन्ध इन कन्याओ के साथ हुआ है, वह इन्हे अधबीच मे छोड कर जाना चाहता है। परन्तु अभी तो इन कन्याओ का कुछ भी नही बिगडा है। ऐसे युवक के साथ इन कन्याओ का विवाह-सम्बन्ध क्यो किया जाए ?

जब यह बात उन कन्याओ के कानो मे पहुची तो उन्होने अपने माता-पिता से कहा, "आप हमारे लिए अन्य किसी भी प्रकार की कल्पना

न करें। अब तो जिनके साथ हमारा सम्बन्ध जुडा है, वही हमारे पति हैं। यदि अब वे साधना के मार्ग पर जाना चाहते है तो हम भी पीछे नही रहेगी । फिर भी हम अपनी ओर से उन्हे मनाने की, रोकने की भरसक चेष्टा करेगी। परन्तु इस कार्य मे यदि हम विफल हुई तो हम भी उन्ही के मार्ग का अनुसरण करेंगी । हम भी अपने जीवन को व्यर्थ मे गँवाना नही चाहती है ।

कन्याओ के माता-पिता आश्वस्त हो गए और एक ही रात्रि मे उन कन्याओ के साथ उस तरुण का (जम्बुकुमार का) विवाह सम्पन्न हो गया ।

जब उन वधुओ के साथ प्रथम रात्रि विताने का अवसर आया तो भव्य भवन के ऊपर की मजिल मे वे तरुणिया सोलह शृ गार सजा कर सामने आ गई। वे तरुण को अपनी ओर आकर्पित करने के लिए नाना प्रकार की चेष्टाए करने लगी । लेकिन पलग पर वैठे हुए तरुण के हृदय मे विषय-वासना की ज्वाला जरा-सी भी प्रवेश नही पा सकी।

आध्यात्मिक जागृति का कार्य वस्तुत श्रेष्टतम कार्य है। परन्तु इस कार्य के लिए कौन तत्पर हो सकता है ? जिसको आध्यात्मिक जिज्ञासा लगी हुई हो, वही इस ओर मुड सकता है। जम्बुकुमार सोचते हैं कि मैंने अनेक जीवन अन्याय और अत्याचार मे लगा दिये और आंतरिक दिव्यता को प्रकट करने मे ध्यान ही नही दिया, यह कितनी बडी हानि है, विडम्बना है !

आज के तरुण और तरुणिया आत्मिक-सुख को खोजने की कोशिश करे तो वे भी उस आतरिक दिव्यता को प्रकट करने मे समर्थ हो सकते है।

बधुओ ! तलवार की धार पर चलना सरल नही है । फिर भी कदाचित् तलवार की धार पर चला जा सकता है। परन्तु आध्यात्मिक, आतरिक धार पर चलना उससे भी कठिन है । आप आश्चर्य करेंगे कि ऐसा भी व्यक्ति हो सकता है जो विवाह की प्रथम रात्रि के सम्मिलन के समय जिसके सामने अप्सराओ के समान सोलह शृ गार से

सजी हुई आठ-आठ तरुणिया खडी हो और ऐसे मनमोहक समय मे भी वह मन-वचन-काया के अणुओ मे जरा भी विकार नही लाये और आध्यात्मिक ज्योति के दिव्य-प्रकाश से चमकता रहे। क्या यह शक्य है ? मैं कहूँगा कि यह अशक्य नही है।

परन्तु आज के युवक इस शक्ति से अपरिचित है। जीवन की आतरिक शक्ति क्या है ? आध्यात्मिक ओज क्या है ? इसका अनेको को पता नही है। हा, जो इसका आस्वादन कर चुके है, वे ही इसका पता लगा सकते है।

वर्तमान मे अधिकाश व्यक्ति सोचते है कि ध्यान लगाते हुए काफी समय व्यतीत कर दिया, परन्तु आज तक उससे कुछ भी नही मिला। क्या वे जमीन मे बीज बोते ही तत्काल उसका फल लेना चाहते है ? जब दुनिया मे साधारण-से-साधारण बीज भी समय पर फल देता है, तब आज का मानव यह चाहे कि हम अभी धर्मस्थान मे जाए और आज ही फल मिल जाए, हमे दिव्य फल मिल जाए तो यह एक हँसी की ही बात होगी।

आज के युवको को और बुजुर्गो को दृढ निश्चय के साथ शाति का धरातल तैयार करना है। प्राणिमात्र को शाति देना है तो दृढता के साथ धर्म का द्वार खोलना होगा और उसके खुलते ही आध्यात्मिक तेज प्रकट होगा। आप बाह्य शक्तियो को क्या देख रहे है ? आतरिक शक्तियो को देखिए और उनकी सुगध लीजिये। इन्सान को चाहिए कि वह धर्मस्थान पर पहुँचे और उसका द्वार खोले।

अब मैं पुन पूर्वोक्त कथा-प्रसग का सकेत करता हू कि उसी रात्रि को पाच सौ चोर जम्बुकुमार के भवन मे चोरी करने के लिए प्रविष्ट हुए परन्तु उनके सरदार के अतिरिक्त सबके पैर चिपक गये। यह कैसे हुआ ? यह सब जम्बुकुमार के ब्रह्मचर्य की महिमा है। पाच सौ चोर उस श्रेष्ठिकुमार के घर के आगन मे रखे हुए धन की पोटलिया बाध रहे है और उनके पैर चिपक जाए तो यह कौन-सी शक्ति है ? उसको समझाने मे समय लगेगा, अत अभी तो मै इतना ही सकेत देता

हू कि जो सच्चे मन से काम करता है, उसी का असर होता है।

आप श्रेष्ठिकुमार की स्थिति को मस्तिष्क मे ले कि पाच सौ चोरो के पैर चिपकने की शक्ति उसमे किस सकल्प से पैदा हुई ? चोरो का सरदार सोचता है—"मुझे देखना है कि यह कौन मत्रवादी है ? मेरे पास दो विद्याए हैं। एक विद्या के प्रयोग से मैं सब को नीद में सुला देता हू और दूसरी से सभी ताले खोल देता हू। परन्तु यहा तो दोनो ही विफल हो गई। सब तो सो गए परन्तु यह मनुष्य क्यो और कैसे बैठा रहा ? ये ताले तो खुल गए परन्तु मेरे साथियो के पैरो में ताले कैसे लग गए ?

जब चोरो का सरदार ऊपर जम्बुकुमार के कमरे के सामने पहुँचता है तो प्रथम दृष्टिपात होते ही साश्चर्य सोचने लगता है कि इस पलग पर बैठने वाला क्या इन्द्र है ? और क्या उसके सामने खड़ी रहने वाली इन्द्राणिया हैं ? क्या यह स्वर्ग है ? परन्तु दूसरे ही क्षण वह सोचता है कि यहा तो एक युवक है। जहा इन्द्राणिया हो, वहा इन्द्र भी मन को नही रोक सकता, वश मे नही रख सकता। परन्तु यहा तो इन्द्राणियो के सामने यह तरुण बैठा हुआ है। मैं अपनी श्रेष्ठ शक्ति इसे दे दू और बदले मे पैर चिपकाने वाली शक्ति क्या है तथा उसका प्रयोग कैसे किया जाता है, वह शक्ति मैं इससे ग्रहण कर लू तो मेरा जीवन सफल हो जायेगा। ऐसा विचार कर चोरो के सरदार ने अपने आपको उस तरुण के चरणो मे अर्पित कर दिया।

उस महापुरुष की शक्ति को उसने समझ लिया था। उसको विश्वास हो गया था कि यह सब आतरिक शक्ति का प्रभाव है। सरदार के समर्पण के साथ ही उन सभी चोरो के पैर भी खुल गए। उन्होने भी चोरी का धधा छोड कर अपने स्वरूप को समझ लिया। उनके सामने एक द्वार खुला और उससे अनेको की जिन्दगी सुधर गई।

आज का मानव भी यदि अपनी शक्ति के अनुसार प्रयत्न करे तो क्या ऐसा नही हो सकता ? आज अनैतिकता का दौरदौरा है। आज

चिन्तन का प्रथम सूत्र : 'मैं कौन हूं'

श्री श्रेयास जिन अतरजामी आतमरामी नामी रे .... ..

परमात्मा के चरणो मे आतरिक उल्लास के साथ किया गया उद्बोधन इस लोक मे रहने वाले परम पावन तत्त्व आत्मा के लिए है। जिस आत्मतत्त्व के द्वारा इस चराचर लोक का स्वरूप दृष्टिगत हो रहा है, जिससे समस्त आध्यात्मिक प्रक्रियाये चल रही है, वह आत्मतत्त्व इस मानव-पिण्ड के पास है और मानव-पिण्ड मे ही नही, अपितु पशु-जगत् मे भी वह व्याप्त है। उस आत्मिक स्वरूप को पहिचानने के लिए आध्यात्मिक-दृष्टिकोण का स्वरूप मानव के मस्तिष्क मे आना जरूरी है।

कभी-कभी मनुष्य के मस्तिष्क मे यह विचार आता है कि आध्यात्मिक धर्म की दशा आत्मा के अस्तित्व मे आ सकती है। परन्तु जब तक हमको आत्मा के यथार्थ अस्तित्व का ज्ञान नही है, तब तक वह जीवन के लिए कैसे श्रेयस्कर हो सकती है ? यह प्रश्न ही प्रकारान्तर से सुन्दर तरीके का है। मूल है तो उसमे शाखा-प्रशाखायें निकल सकती हैं। यदि बीज है तो वृक्ष बन सकता है। परन्तु बीज ही न हो तो शाखा-प्रशाखाए कैसे हो सकती हैं ? मानव को इस विषय मे निश्शक होकर चिन्तन करना है।

बधुओ ! जिस आधार को लेकर चिन्तन चल रहा है, उस शरीर पिण्ड मे वह चैतन्य-स्वरूप आत्मा विद्यमान है। उसके लिए अन्य प्रमाणो की आवश्यकता नही रहती है। प्रकाश को ढूढने के लिए अन्य प्रकाश की आवश्यकता नही है। इसी प्रकार आत्मा को ढूढने के लिए यदि कोई चाहे कि हमको अन्य कोई प्रमाण दिया जाये तो क्या वह प्रश्न

महत्त्वपूर्ण होगा ? शास्त्रकारो का कथन है कि इस विषय मे स्वसवेदन ही एक महत्त्वपूर्ण चिन्तन है। स्वय का अनुभव, स्वय का सवेदन, इसका मतलब यह है कि 'मै हू' इस प्रकार की प्रतीति जहा हो रही है तो उस प्रतीति का आधार, उस प्रतीति का जो गुणी है, वह आत्मा है। किसी भी व्यक्ति से पूछा जाये कि 'तू कौन है ?' तो वह उत्तर देगा कि 'मैं अमुक हू—मैं अमुक हू,' तो इस वाक्य मे भी अमुक कहने के पहिले 'मैं' आया। जब 'मै' शब्द का प्रयोग हो रहा है तो जिसके लिए 'मै' प्रयोग हो रहा है, वह कौन है ? वह आत्मा है।

जो दृढ सकल्पी 'मैं' है, वह सशय रहित है और स्वय दृढता के साथ प्रयोग करता है कि 'मेरा है' और 'मै हू।' यह 'मैं' वस्तु-स्वरूप का कथन है कि 'मै' यानि आत्मा है और यह कथन अभिमान आदि का सूचक नही है। मै अमुक ज्ञान रखता हू, मुझे अमुक विज्ञान है, मैं अमुक कला के साथ कार्य कर सकता हू, मेरी इतनी योग्यता है, मै इतना गणित का कार्य सपादन कर सकता हू, इतनी गति मुझ मे है आदि-आदि कहने वाला वह चैतन्य-तत्त्व आत्मा है। इस कथन की शक्ति आत्मा से भिन्न तत्त्व मे नही है। जड तत्त्व तो यह नही कह सकता है कि 'मैं हू।' जिसमे 'मै' कहने की ताकत नही है, वह आत्मा नही है। वह चैतन्य नही है और जो दृढतापूर्वक 'मैं' कहता है, वह आत्मा है।

कभी-कभी वह आत्मा ही विपरीत दृष्टिकोण से अपने आपका निषेध करने पर उतारू हो जाती है और कह दिया जाता है कि मै नही हू—आत्मा नही हू। ऐसे लोगो से पूछा जाये कि 'आत्मा नही है' यह कहने वाला कौन है ? निषेधकर्ता कौन है ? जो निषेधकर्ता है, वही आत्मा है। निषेध की दृष्टि से भी आत्मा का स्वरूप स्वयसिद्ध है। उस स्वरूप को सिद्ध करने के लिए अनेकानेक प्रमाण भी दिए जा सकते है। परन्तु मूलत उस स्वरूप के पीछे ही वे प्रमाण लागू होते है। व्यक्ति के पास तर्क-वितर्क की शक्ति है। जो तर्क-वितर्क करता है, वह तर्क-वितर्क करने वाला ही आत्मा है। वह भले ही अपने मुह से कहे कि जैसे हम

अन्य पदार्थों को अपनी आखो से देख रहे हैं, उसी तरह यदि कोई आत्मा भी हमको निकाल कर बता दे तो हम मान सकते है, परन्तु जो अन्य पदार्थों की तरह आत्मा को भी प्रत्यक्ष नही दिखला सकते, उनकी बातो को हम कैसे माने ? ऐसी भावना अनेकानेक व्यक्तियो की हो सकती है। यह पूर्व मे भी बनी है और भविष्य मे भी बन सकती है।

इसमे कोई आश्चर्य की बात नही है—जैसे कि प्रदेशी राजा राजकीय सत्ता और सपत्ति से युक्त था परन्तु साथ ही साथ आत्मा के विषय मे सशयशील भी था। उसका दृष्टिकोण था कि आत्मा नामक तत्त्व जब तक मैं अपनी इन आखो से नही देख लू, तब तक मैं उसे मानने को तैयार नही हू। जब किसी भी व्यक्ति के मु ह से राजा प्रदेशी यह सुनता कि आत्मा है, परमात्मा है तो वह उस व्यक्ति को पकडवा कर जेल मे बद करवा देता था और उससे कहता कि बता आत्मा कहा है ? परमात्मा कहा है ? तुम्हारे इस शरीर मे आत्मा है तो मै उसे देखना चाहता हू। अपनी आखो से यदि शरीर मे आत्मा देख लू तो समझ लूगा कि आत्मा नाम का कोई तत्त्व है। वह हाथ मे नगी तलवार लेकर कैदी का सिर, हाथ, पैर, नाक, कान अलग-अलग काट कर देखता कि उसमे आत्मा नाम का तत्त्व कहा है ? इस प्रकार उसकी नास्तिकता बढती गई। दिन-प्रतिदिन वह इसी कार्य मे लगा रहता था। खून से उसकी तलवार रगी रहती थी और वह अनेक व्यक्तियो को त्रास देता रहता था।

एक बार किसी समय जब वह दूर से थका हुआ आया तो अपने प्रधान जी के साथ बगीचे मे वृक्ष के नीचे विश्राति लेने की दृष्टि से बैठा और वहा विश्राति लेकर जैसे ही उसने दृष्टि डाली तो वहा बगीचे के प्रागण मे जनसमुदाय शात एकचित्त होकर आत्मा और परमात्मा सम्बन्धी वृत्तान्त सुन रहा था। यह देख प्रदेशी मन मे सोचने लगा कि यह बगीचे मे कौन है ? कौन जड-मूढ यहा बैठा हुआ सुना रहा है और कौन ये जड-मूढ सुन रहे हैं ?

राजा प्रदेशी ने यह कल्पना अपने मन मे ही की परन्तु आकृति

पर उसकी झलक तक नही आने दी। उसने प्रधान जी को भी अपने मन की भावना ज्ञात नही होने दी। प्रधान जी के समक्ष तो उसने शिष्ट शब्दो का ही प्रयोग किया और कहा, "प्रधान जी ! ये कौन बैठे हुए है और क्या सुन रहे है ?" तब प्रधान ने राजा के वचनो को सुन कर कहा, "राजन् ! ये आत्मवादी श्रमण है। इनका नाम केशी श्रमण है। आत्मवाद के ये स्वामी है। ये भव्य आत्माओ को प्रबोध दे रहे है, लोक और परलोक सम्बन्धी प्रक्रियाओ का विवेचन कर रहे है। वर्तमान जीवन मे सुख और शाति कैसे मिले और भविष्य मे भी यह आत्मा वास्तविक शाति का अनुभव कैसे करे, इसका उपाय बता रहे है।

यह सुन कर राजा प्रदेशी की जिज्ञासा बढी और वह कहने लगा कि क्या ये मुझे आत्मा के दर्शन करा सकेगे ? तब प्रधान ने कहा, "राजन् ! आप पधारिए और उनसे ही प्रश्न कीजिए। वे आपके लिए क्या कर सकते है और क्या नही, इसका निर्णय मैं नही कर सकता। हा, आपकी प्रसन्नता हो तो हम चले।"

राजा प्रदेशी प्रधान के साथ सभा के समीप जाकर खडा हो गया और कुछ मुस्कराता हुआ देखने लगा। तब केशी श्रमण ने राजा की ओर सकेत किया—"कौन राजा प्रदेशी ?" अपने नाम को सुन कर राजा प्रदेशी मन मे अचभित हो गया। वह सोचने लगा कि मेरा नाम इन्होने कैसे जान लिया ? परन्तु दूसरे ही क्षण उसने सोचा कि जाने क्यो नही ? मै बहुतो को नही जानता हू परन्तु मुझे तो वे लोग जानते हे। सवारी मे निकलते हुए कही इन्होने मुझे देख लिया होगा अथवा जनता से जानकारी कर ली होगी। इसी कारण इन्होने मुझे पुकार लिया।

राजा इतना चिन्तन कर ही रहा था कि केशी श्रमण ने पुन कहा, "राजन् ! उस वृक्ष की छाया मे बैठे-बैठे आपके मन मे विचार पैदा हुआ कि कौन यह जड-मूढ बैठा हुआ है और कौन ये जड-मूढ सुन रहे ह ? क्या यह बात सच्ची है ?"

इस प्रश्न ने तो राजा प्रदेशी के जीवन को ही झकझोर दिया।

वह सोचने लगा कि मैं कितनी दूरी पर था । मेरी आकृति भी यहा से स्पष्ट रूप मे नही दीख पा रही थी । उस वक्त मैंने जो अपने मन मे सोचा और जिस विचार की झलक प्रधान तक को भी नही हुई, परन्तु ये महात्मा उसे कैसे जान गये ?

प्रदेशी अपने अतर्मन की बात को सुन कर जिज्ञासावान बनता है और फिर प्रश्नोत्तरो के द्वारा वह आत्मा सम्बन्धी जानकारी करता है।

बन्धुओ, राजा प्रदेशी के प्रश्नोत्तरो का प्रकरण बडा विस्तृत है । प्रश्न और उत्तर, प्रतिप्रश्न और पुन उत्तर, इस विषय को सिलसिलेवार सुने तो आपको आत्मा सम्बन्धी विज्ञान का पूरा बोध हो सकेगा । आप स्वय चिन्तन कीजिए कि इतनी दूरी पर रहने वाले व्यक्ति के मन की बातो को केशी श्रमण ने कैसे जान लिया ? आखे तो शरीर तक सीमित है । ये शरीर के ऊपरी भाग को देख सकती है । परन्तु शरीर के भीतर क्या है, यह आखे नही देख सकती । मन तो शरीर के अदर रहने वाला एक तत्त्व है, जिसके माध्यम से आत्मा अपना कार्य सपादन करती है । इस मन की गतिविधि को महात्मा केशी श्रमण ने कैसे पहिचान लिया ?

पहिचानने की यह शक्ति बाहरी दृष्टि मे नही है, यह अदर की शक्ति मे समायी हुई है । इसके द्वारा सूक्ष्म-से-सूक्ष्म तत्त्व जाना जा सकता है ? स्थूल दृष्टि से सूक्ष्म तत्त्व को नही देखा जा सकता । वायु अन्य पदार्थों की अपेक्षा सूक्ष्म है । जैसे वायु को ग्रहण करने के लिए विशेष यत्र की आवश्यकता है, वैसे ही मन की गति को पकडने के लिए आध्यात्मिक शक्ति की आवश्यकता है । इन कल्पनाओ के आकार को आत्म-प्रदेशो से जान लेना, यह शक्ति जिसमे हो, वही दूर रहने वाले व्यक्ति के मन के परिणामो को जान सकता है । आत्मा की यह शक्ति हर व्यक्ति मे है और उसको साधना के द्वारा वह प्रकट कर सकता है ।

आप यहा जिस वायुमडल मे बैठे हैं, उसमे कैसे-कैसे सूक्ष्म तत्व समाए हुए हैं तथा आकाश मे कौन-कौन से ग्रह, नक्षत्र आदि कितनी दूरी

पर है और उनका क्या स्वरूप है, इन्हे आप पूर्णरूप से इन चर्म-चक्षुओ से नही देख सकेगे। परन्तु दूरवीक्षण यत्र के माध्यम मे इन दूर के तत्त्वो, ग्रह–नक्षत्रो को भी अधिक स्पष्टता से देख सकते है। परन्तु किसी की आखो मे यदि देखने की शक्ति न हो तो क्या वह व्यक्ति दूरवीक्षण यत्र के माध्यम से उन सूक्ष्म तत्त्वो व मगल ग्रह आदि को देख सकेगा ? कदापि नही। जिसकी आखो मे ज्योति नही, ऐसा व्यक्ति दूरवीक्षण यन्त्र से भी नही देख सकता। भले ही आंखो का आकार हो, पलके भी हो, काली टीकी भी हो, सब कुछ हो, परन्तु देखने मे सहायक, आतरिक शक्ति व्यवस्थित नही है तो वह व्यक्ति आखो से, दूरवीक्षण यत्र द्वारा भी कुछ नही देख पाता। आखो की यह आतरिक शक्ति (अवयव) इतनी सूक्ष्म है कि इसकी खोज अभी तक भौतिक वैज्ञानिक भी नही कर पाये है। वे परेशान है। इन आख आदि अगो को सचालित करने वाली शक्ति कितनी महत्त्वपूर्ण है, उसका अनुमान लगाना कठिन अवश्य है, लेकिन इस शक्ति के रहने पर ही आख आदि के अवयव सक्रिय हो सकते है और देखने का कार्य किया जा सकता है। यह आतरिक शक्ति ही आत्मा है, जिसका हर एक व्यक्ति अनुभव करता है।

चाहे कोई ग्रेजुएट है या व्यापारी है या घर के कार्य की योग्यता वाला है, परन्तु जिस विषय मे जो दक्ष और प्रवीण है, उस योग्यता का वह अन्दर अनुभव करता है। लेकिन वह योग्यता कितनी है, उसे क्या हथेली पर निकाल कर दिखलाया जा सकता है ? इस प्रकार कोई भी अपनी योग्यता नही दिखला सकता है। फिर यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि आप प्रत्यक्ष में नही दिखला सकते, इसलिए आप मे योग्यता नही है तो आप उसे क्या कहेगे ? आप सहज ही यह कहेगे कि वह योग्यता मुझ मे है, मै उसका अनुभव कर रहा हू परन्तु अन्दर की अनुभूति बतला नही सकता और इतने मात्र से यदि कोई उसे अस्वीकार करता है तो भले ही करे। परन्तु मुझे सशय नही है। मै तो निश्चित रूप से अदर की योग्यता का अनुभव कर रहा हू। और भी समझिये कि अदर मे वह

कैसा है और वाहर मे कैसा है, इसका विज्ञान व्यक्ति को स्वय है। वाहर से भले ही कोई सुन्दर फैशनेविल पोशाक सजा कर चले, परन्तु अपने अदर की जो वास्तविक स्थिति है, वह उसके अदर के अनुभव के सामने प्रकट रहती है, वह उसे ओझल नही कर सकता है। वह अपने आपको भुला नही सकता। वह जानता है कि मेरी आतरिक स्थिति क्या है ? यद्यपि मैं वाहर से सुन्दर हू परन्तु अदर का वह स्वरूप वाहर आ जाये तो लोग मुझे घृणा से देखने लगेगे। लेकिन जो अदर और वाहर से एक है, वह सोचता है कि अदर की शक्ति को जीवन के साथ जितना सवन्धित रखूगा, उज्ज्वल रखूगा, उतनी ही शक्ति वढेगी। वह अदर की शक्ति के विकास का हर क्षण जीवन के साथ अनुभव करता है और जो अनुभव करता है, वही आत्मा है। इस प्रकार आत्मा के अस्तित्व के बारे मे दो मत नही हो सकते।

इस प्रकार वैज्ञानिक दृष्टिकोण और आध्यात्मिक दृष्टि मे आप अच्छी तरह अनुभव कर सकते हैं कि आत्मा का अस्तित्व है। फिर प्रत्येक मानव मे वह शक्ति क्यो नही आ रही है, जवकि हर व्यक्ति इसे जीवन मे देख सकता है ? इसका कारण यह है कि व्यक्ति अपने आत्म-स्वरूप को अन्दर से देखने का प्रयास नही करता है, किन्तु वाहर-ही-वाहर देखता है। वाहर के जो दृश्य है, वे राग-द्वेषपूर्ण एव विषमतामय है।

आज मानव-मानव मे विषमता की खाई पड गई है। इस विषमता की खाई को पाटने के लिए समता-दर्शन की नितान्त आवश्यकता है। इसके न होने से मानव अपनी आत्मा को माज नही पा रहा है। यदि वह समता-दर्शन के महत्त्व को जान ले तथा उसे आचरण मे उतार ले तो परिमार्जित हो जाये।

आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है और वह अपनी आंतरिक शक्तियो को देख सकती है। परन्तु मानव आतरिक शक्तियो को न देखकर केवल वाहर की आकृतियो को देखकर ही फूला नही समाता है। जैसे कि— मैं कितना सुन्दर हू, मैं कितना गौरवर्ण हू। यह कुकुम का तिलक ठीक है या नही है, इसकी

परीक्षा लोग दर्पण मे देखकर करते है। ऐसा वे क्यो करते है ? दर्पण मे वस्तु का प्रतिबिब पडता है, इसी कारण उस मे देखने वाला व्यक्ति जैसा है, वैसा ही देख लेता है। जैसे आप दर्पण से मुखाकृति देख सकते है, उसी प्रकार समता के दर्पण मे अपने आपको देख ले तो अदर के जीवन की समता को देख सकेगे। जब तक मनुष्य समता के धरातल पर नही आता है, तब तक मस्तिष्क की गुत्थियो को वह नही समझ सकता। अनेक व्यक्ति अनेक तरह की कल्पनाओ की कुछ ऐसी पोटलिया लेकर चल रहे है, जिससे वे बोझिल बन रहे है और सभल नही पा रहे हैं। उनके लिए समता दर्शन की नितान्त आवश्यकता है। इस दर्शन मे किसी जाति, व्यक्ति, पार्टी या अमुक हिस्से का निर्देश नही है। यदि सब समता-दर्शन को ग्रहण कर ले तो अपनी उलझी हुई मानसिक स्थिति को ठीक कर सकते है और शुद्ध हो सकते है। समता-दर्शन की दृष्टि से मानव-जीवन का मूल्याकन करे। इससे आप अपने जीवन को भी पहिचान सकते है कि मै कौन हू और मुझे क्या करना चाहिए। परिवार के साथ मेरा क्या सम्बन्ध है, समाज के प्रति मेरा क्या उत्तर-दायित्व है, राष्ट्र के लिए मेरा क्या कर्तव्य है और विश्व के साथ मेरी क्या जिम्मेवारी है ? परन्तु ऐसा सोचे और करे कैसे ? जब मापदड ठीक बन जाये, तभी यह हो सकता है। परन्तु आज के मानव का दृष्टिकोण क्या है ? वह बाह्य दृष्टि से व्यक्ति का मूल्याकन करता है। बाहरी दृष्टि से यदि कोई व्यक्ति किसी का मूल्याकन करता है और देखता है कि यह व्यक्ति अच्छी पोशाक सजा कर आया है तो यह बहुत बडा आदमी है और इस व्यक्ति की पोशाक साधारण है तो कुछ भी नही है। ऐसा सोचने वाला व्यक्ति अपने स्वरूप को भूलता है और दूसरो के साथ भी ईमानदारी का व्यवहार नही करता है। इस दृष्टि के कारण ही इन्सान विषमता के दलदल मे फसा हुआ है। इस सम्बन्ध मे एक रूपक है।

किसी गाव मे एक पटेल था। वह था तो पैसे वाला परतु

उसकी पोशाक वैसी ही थी, जैसी कि गावो मे पाई जाती है—रेजे की मोटी कसोदार अगरखी, रेजे की मोटी धोती और वैसी ही जूतिया । ऐसी पोशाक के साथ वह पटेल किसी शहर मे आभूषण खरीदने के विचार से एक बडे जौहरी की दूकान पर पहुँचा । दूकान के बडे जौहरी जी तकिये के सहारे बैठे हुए थे और दस-बीस मुनीम-गुमाश्ते काम कर रहे थे । पटेल के पैरो की आहट सुन कर सबकी नजर उसकी तरफ गई । परन्तु उसकी पोशाक गाव मे रहने वाले साधारण व्यक्ति जैसी होने के कारण उन्होने सोच लिया कि यह कोई मामूली आदमी होगा । ऐसा सोच कर किसी ने उसके साथ बातचीत तक नही की और सब अपने-अपने काम मे लग गये ।

पटेल कुछ देर दूकान पर खडा रहा । उसने सोचा कि मेरी तरफ ये देखें और कुछ पूछे तो मैं इनसे माल लू, जवाहिरात खरीदू । परन्तु वहा खडे रहने पर भी किसी ने उसकी तरफ दृष्टि नही डाली तो उसने सोचा—"अरे, इन्होने मेरा मूल्याकन पोशाक से किया है और मुझे ना-कुछ समझ लिया है । इन्होने मेरी तरफ इसानियत के नाते से भी नही देखा । यह कितनी बडी विषमता है ।

आज भी क्या भारतभूमि पर इसी तरह से मूल्याकन नही हो रहा है ? जहा इस तरह से मनुष्य का मूल्याकन हो वहा आत्मा के स्वरूप को कैसे समझा जा सकता है ?

उस पटेल मे आत्मा की शक्ति थी, चिन्तन था । उसने तय किया कि ये लोग पोशाक से मूल्याकन कर रहे हैं, अत इनको कुछ सावधान करना चाहिए । ये जौहरी तो बने बैठे हैं परन्तु सच्चे जौहरी नही है । ये बुद्धिमान हैं परन्तु इनमे स्वय का विवेक नही है ।

पटेल थोडी देर दूकान पर खडा रहा और फिर नीचे उतर कर बाजार मे चला गया । आगे जाकर उसने किसी व्यक्ति से धोबी की दूकान का पता पूछा और वहा जा पहुचा । पटेल ने धोबी से कहा, "भाई, किसी मत्री या बडे आदमी की पोशाक भी तुम्हारे पास धुलने

को आई है क्या ?" धोबी ने उत्तर दिया, "हा आई हुई है।" पटेल ने कहा, "उसे धोना है या वह तैयार है ?" जवाब मिला कि पोशाक धुली हुई तैयार है। इस पर पटेल ने कहा, "भाई, थोडी देर के लिए वह पोशाक मुझे किराये पर दे दो। मैं उसका किराया और साथ ही दुगुनी धुलाई भी दे दूंगा।" ऐसा सुन कर धोबी ने सोचा कि यह पटेल है या अन्य कोई है ? मैं कीमती पोशाक इसे दे दू और यह वापिस लाकर न देवे तो क्या हाल होगा ? इधर पटेल ने भी सोचा कि धोबी असमजस मे पड गया है। ऐसा विचार कर उसने कहा—"तू क्यो डर रहा है ? पोशाक के वदले जितने रुपये चाहिए, ले ले।" ऐसा सुनते ही धोबी खुश हो गया और उसने पटेल को कीमती पोशाक सौप दी।

पटेल ने फिर सोचा कि केवल पोशाक से ही काम नही चलेगा। इसके साथ और भी सामग्री चाहिए। अत उसने सावुन खरीदा, वढिया बूट खरीदे और एक वढिया वेत भी मोल ली। फिर वह एक तालाव पर पहुँचा। वहा साबुन लगा कर नहाया और फिर सारी सामग्री से उसने अपनी काया को सुशोभित कर लिया। इस प्रकार उसने ऊपर की सारी सजावट कर ली और बाजार के बीच मे से होकर चल पडा।

अब पटेल फिर उसी जौहरी की दूकान के समीप पहुँचा। बडे जौहरी जी ने उसे देखते ही मुनीम-गुमाश्तो से कहा, "देखो, कोई बडा आदमी या मत्री आ रहा है।" ऐसा सुनते ही बडे मुनीम जी उठे और उनके साथ दूसरे गुमाश्ते भी उठ खडे हुए। वे सव दूकान के नीचे आये। बडे मुनीम जी ने हाथ मिलाया और नम्रतापूर्वक कहा—"पधारिये, साहब।"

यह सब देख कर उस पटेल ने सोचा कि यह मेरी कद्र नही हो रही है, यह तो मेरे शरीर पर पडी हुई कीमती पोशाक की कद्र हो रही है।

इसके बाद सबसे पहिले चाय-नाश्ते का प्रबध हुआ। बडे मुनीमजी ने चुपचाप सारा इन्तजाम करवा दिया। सेठ साहब ने भी बडे प्रेम के साथ कहा, "साहब, भीतर पधारिये।" साहब अदर गये। वहा बहुत बढिया तैयारी थी ही। चादी का बाजोट, चादी के थाल-

कटोरिया, यह सव आप सेठ लोग समझते ही होगे। थाल अनेक तरह के पकवानो से भरा हुआ था। नकली साहब के पास बैठ कर सेठ साहव वातचीत करने लगे। वे बडे प्रेम से वोले - "आरोगिये साहब।"

पटेल कुछ देर विचार करता रहा और फिर उसने एक घेवर उठा कर अपनी जेव मे रख लिया। इसके बाद गुलाबजामुन उठा कर दूसरी जेव मे रख लिया। यह सब देख कर जौहरी सोचने लगा, "इन्हे यह क्या हो गया ? इनके दिमाग मे खराबी तो नही आ गई ?" इतने मे ही देखा तो साहव ने एक जलेबी उठाई और उसे अपने वस्त्र के आगे के हिस्से मे रख लिया। अब तो जौहरी जी से नहीं रहा गया और वे वोले, "साहव, यह आप क्या कर रहे है ? क्यो व्यर्थ मे अपनी पोशाक खराव कर रहे है ? आप इस कीमती पोशाक को मलीन मत करे। मैं मिठाई टिफिन-वक्स मे भरवा कर आपके साथ भिजवा दू गा।"

ऐसा सुनते ही पटेल ने कहा, "सेठ साहब, यह बढिया भोजन जिसकी बदौलत मिल रहा है, उसको ही खिलाना है। आपने मुझे पहिचाना नही। मैं तो वही पटेल हू, जो कुछ समय पहिले आपकी दूकान पर आया था परन्तु उस समय मुझ पर आपकी नजर ही नही पडी। अब मैं वढिया पोशाक सजा कर आया हू तो खाने को अच्छी-अच्छी मिठाइया मिल रही हैं। आपका जीवन केवल वाह्य दृष्टि की ओर ही लगा हुआ है। उसी दृष्टि से आप मानव-जीवन का मूल्याकन कर रहे हैं। आप सच्चे व्यापारी नही है। आपके पास कैसा भी व्यक्ति आये परन्तु आपकी सव पर समभाव की दृष्टि रहनी चाहिए। आपने पोशाक देख कर मेरा सम्मान किया। यदि मैं चाहता तो इस पोशाक से वहुत कुछ ठग सकता था। परन्तु मुझे ऐसा कुछ नही करना है। मेरी चैतन्य आतमा कहती है कि ऐसा नही करना चाहिए।"

पटेल ने इस प्रकार सेठ को उत्तम शिक्षा दी, जिससे उनके जीवन मे एक नया प्रकाश आ गया।

वधुओ, यह तो एक रूपक है। यह कैसा भी हो परन्तु आज

के भाई-बहिन बाहर की दृष्टि से ही मूल्याकन कर रहे है। आज अदर के चिन्तन से मूल्याकन नही हो रहा है। यदि बाह्य पदार्थो के चिन्तन को छोडकर उस सत्-चित्-आनन्दघन की ओर दृष्टि है तो ऐसा व्यक्ति कोई धोखा नही दे सकता, ठग नही सकता। इसका आप स्वय अनुभव कर सकते है। यदि जीवन को सार्थक करना है तो समता-दर्शन का सिद्धात हरएक व्यक्ति के हृदय मे आना चाहिए। तब आप सोचेगे कि जैसा सत्-चित्-आनन्दघन मेरे अन्दर है, वैसा ही सामने वालो मे भी इसी रूप मे है। वही योग्यता उनकी भी है। यदि प्रत्येक व्यक्ति का दृष्टिकोण ऐसा बन जाता है तो सभी का जीवन भी समतादर्शनमय हो सकता है। यदि समतादर्शन का सिद्धात सबके दिमाग मे जम गया तो जनकल्याण की भावना रामबाण दवा की तरह काम करेगी। अत सब से पहिले समतादर्शन के माध्यम से अपने आपको समझने का प्रयास करे। यदि आप समतादर्शन के सिद्धात को लेकर चलते है तो स्वय को, परिवार को, राष्ट्र को और सम्पूर्ण विश्व को समता मे ढालने का यह सफल प्रयास होगा और राष्ट्रीय धरातल पर व्याप्त विषमता सर्वथा समाप्त हो जाएगी। साथ ही आप यह जान सकेगे कि वास्तविक समाजवाद की स्थापना किस प्रकार हो सकती है।

अत मे मै इतना ही सकेत करना चाहता हू कि आप प्रार्थना के माध्यम से अदर की शक्ति को समझने का और अदर के विचारो को माजने प्रयास करेगे तो आपका यह लोक और परलोक दोनो ही सुधर जायेगे।

●●●

बीकानेर—
२०३०, आषाढ सुदी १५

श्रेयमार्ग : प्रेयमार्ग

श्री श्रेयास जिन अतरजामी, आतमरामी नामी रे ।
अध्यातम मत पूरण पामी, सहज मुक्ति गति गामी रे ।
शब्द अध्यातम अर्थ सुणीने, निर्विकल्प आदरजो रे ।
शब्द अध्यातम भजना जाणी, हाण ग्रहण मति धरजो रे ।
अध्यातम जे वस्तु विचारी ·· ·· ··· ······· ·· ···· · ।

कविता के माध्यम से श्रेयास परमात्मा की स्तुति की गई है । प्रभु श्रेयास जीवन के श्रेयमार्ग के प्रतीक हैं । विश्व मे दो ही मार्ग है— एक श्रेयमार्ग और दूसरा प्रेयमार्ग । प्रेयमार्ग की तरफ तो सारी दुनिया जा रही है, परन्तु श्रेयमार्ग की ओर विरले ही व्यक्तियो का ध्यान आता है ।

प्रेयमार्ग का तात्पर्य वाहरी भौतिक जगत् से है । इन इद्रियो से दिखलाई देने वाले नाशवान् मनोहारी दृश्यो से आत्मा प्रेम करने लगती है और क्षणिक सुखो मे ही अपने जीवन की इतिश्री मान लेती है, तो समझ लेना चाहिए कि वह आत्मा प्रेयमार्ग की ओर गमन कर रही है । यह प्रेयमार्ग ही विश्व की अशाति का कारण है और यही विपमता की जड है । मानव के मस्तिष्क की विकृति इसी से वनती है । यह दशा आज से नही, कल मे नही, सख्यात वर्षो से ही नही । असख्यात वर्षो से भी नही, किन्तु अनादिकाल से चली आ रही है, फिर भी आत्मा को इन क्षणिक पदार्थो से तुष्टि नही हो रही है ।

यह सव अज्ञान दशा अथवा अविद्या की अवस्था है । कर्मो के झझावातो से आत्मा अपने वास्तविक मार्ग से भटकी हुई है । इस प्रकार

भटकी हुई आत्मा को स्वय का रूप अर्थात् श्रेयरूप दिखलाई नही पडता है। एक मानव तन मे भी यदि वह अपने श्रेयमार्ग का वास्तविक रूप समझ ले तो इस लोक और परलोक मे अपने भव्य जीवन का निर्माण कर सकती है।

प्रभु के पवित्र स्वरूप को सामने रख कर स्वय के जीवन मे श्रेय मार्ग अभिव्यक्त किया जा सकता है, जिसे आध्यात्मिक मार्ग भी कह सकते है। कई भाई-बहिन आध्यात्मिक शब्द पढते ही है परन्तु ऐसा कभी नही सोचते कि अध्यात्म है क्या ? अध्यात्म किसको कहना चाहिए ? वक्ता भी अपने भाषणो मे भौतिक और आध्यात्मिक इन दो शब्दो का जिक्र करते है। परन्तु जनमानस मे इन दोनो शब्दो का यथार्थ रूप नही आ पाता है। वे केवल शब्दो मे उलझ जाते है। इसलिए कवि आनन्दघन जी ने अपनी कविता मे इस विषय को स्पष्ट करते हुए कहा है कि—

शब्द अध्यातम अर्थ सुणीने, निर्विकल्प आदरजो रे।
शब्द अध्यातम भजना जाणी, हाण गहण मति धरजो रे।

अध्यातम भी एक शब्द है। कठ, तालु, ओष्ठ आदि से जैसे अन्य शब्दो का उच्चारण किया जाता है, वैसे ही इस शब्द का भी उच्चारण होता है। परन्तु अध्यातम शब्द के पीछे रहे हुए अर्थ का अनुसधान करना आवश्यक है। यदि मनुष्य उसके अर्थ को सही तरीके से समझ लेता है तो आध्यात्मिक स्वरूप का विज्ञान उसके मस्तिष्क मे आ सकता है और फिर वह श्रेयमार्ग के गहन तत्त्व को समझने का प्रयास कर सकता है।

जाग्रदादि सर्वावस्थासु अनुवर्तते इति आत्मा—अर्थात् निरतर रूप से जाग्रत और सभी अवस्थाओ मे जो अनुवर्तन करता है, रहता है, वह आत्मा है और आत्मनि अधि इति अध्यात्मम्–अर्थात् आत्मा के अदर रमण करना अध्यात्म है।

इस विश्व मे प्राणियो का जो रूप दिखलाई दे रहा है, वह सब आत्मिक शक्ति का दृश्य है। आप रग-विरगी पगडिया या टोपिया लगाये हुए अथवा नगे सिर बैठे है। आपकी पगडिया भिन्न-भिन्न है, टोपिया अलग-अलग है और वस्त्र तथा वेशभूषा मे भी अतर है परन्तु सामान्य दृष्टि से मानव-मानव मे अतर नही है। मनुष्य के रूप मे सब एक हैं। परन्तु विशेप-दृष्टि से यदि पुन चिन्तन किया जाए तो मानव-मानव मे भी भिन्नता दृष्टिगत होती है। सभी मनुष्य एक ही साचे मे ढली हुई वस्तु की तरह एक सरीखे नही है। सामान्य रूप से उनमे एक समान आकृति दिखलाई देती है। कान, आखें, नाक, मुह, हाथ-पैर और शरीर, इनकी दृष्टि से तो समानता है परन्तु यदि आप विशेष रूप से मानवो का आकार देखेगे तो उनमे एकरूपता नही, किन्तु विचित्रता मिलेगी। जब किसी मशीन से वस्तुए तैयार की जाती हैं तो उससे जितनी वस्तुए वनती है, वे सब एक ही आकार की होती है। परन्तु मानव का ढाचा एक सरीखा नही है। सहज ही मनुष्य यह सोच सकता है कि इस विभिन्नता के पीछे कारण है। माता-पिता की विविधता है, इसीलिए मनुष्यो की आकृतियो मे भी भिन्नता है। परन्तु यह हेतु भी ठीक नही वैठता है। माता-पिता भिन्न न हो, तव भी एक ही माता-पिता की सव सताने एक सरीखी नही होती है। एक ही माता की कुक्षि से पैदा होने वाली सतानो मे भी आप भिन्नता देखेगे—शारीरिक दृष्टि से, वौद्धिक दृष्टि से और मानसिक दृष्टि से भी। वे सव विचित्रताये होने पर भी आप उनमे एक समान-तत्त्व अवश्य पायेगे और वह तत्त्व है चैतन्य स्वरूप आत्मा।

सव आत्माये दुख को अप्रिय समझती है और सुख

है। सब दुःख से बचने का प्रयास करती है और सुख की उपलब्धि के लिए प्रयत्न करती है। 'मैं हूं' और 'मेरे सामने यह व्यक्ति है' इतना ज्ञान तो हर एक आत्मा मे पाया जाता है और उस छोटे से ज्ञान की दृष्टि से यदि आप चिन्तन करेगे तो यह समानता सब मे मिलेगी। शास्त्रीय दृष्टि से कहा जाए तो सब शरीरो के बीच मे रहने वाली आत्माये योग्यता की दृष्टि से एक सरीखी है। उनमे भिन्नता नही है।

हिलने-चलने आदि की क्रियाये इस आत्मा की उपस्थिति मे ही होती है। खाने-पीने का पुरुषार्थ भी इस आत्म-शक्ति के रहने पर ही होता है। छोटे बच्चे के समक्ष भी यदि कडवी वस्तु रख दी जाए तो वह ग्रहण नही करेगा। वह मीठे (मधुर) पदार्थों को ही खाने की कोशिश करेगा। इस प्रकार कडवे और मीठे पदार्थों की पहचान करने वाला कौन है ? मोटे तौर पर तो व्यक्ति यही सोचता है कि उसकी पहिचान करने वाली जिह्वा है। परन्तु आप गहराई से विचार करेगे तो ज्ञात होगा कि जिह्वा नही है। जिह्वा तो एक मुर्दे मे भी विद्यमान है। उस की जिह्वा पर आप मीठा पदार्थ रखिए तो वह मीठे के जायके का अनुभव नही करेगी या कालकूट जहर रख दीजिए तो भी उस जहर का अनुभव नही कर सकती। इससे यह भली-भाति सिद्ध होता है कि जिह्वा कडवे और मीठे का अनुभव करने वाली नही परन्तु उसके अदर रहने वाला जो तत्त्व है, वही उसका अनुभव करने वाला है। वह तत्त्व विज्ञानवान है और इस प्रकार प्रतीति कराता है कि कटु पदार्थ खाने से हानि होगी और मधुर खाने से पुष्टि। परन्तु जो व्यक्ति आत्मस्वरूप को भूल कर सिर्फ जिह्वा को ही सब कुछ समझता है या नेत्रो को अथवा नासिका या श्रोत्रेन्द्रिय आदि को ही महत्त्व देता है, वह प्रेयमार्ग का अनुगामी है। उसकी आत्मा अज्ञान से आच्छादित है। अज्ञान ससार के दुःख का कारण है और वही विषमता की सृष्टि करने वाला है। इसी प्रेयमार्ग का अनुसरण करने के कारण ही आत्मा की दुर्दशा हो रही है। इन्सान जब अपने आपको भूलता है तब उसकी ऐसी ही दशा होती

है। यदि वह इससे मुड कर अपनी मूल दशा मे आ जाए और चिन्तन करने लगे कि मैं आत्मा हू और मेरी जो आतरिक शक्तिया है, वे यदि सही ज्ञान के साथ है तो आध्यात्मिक-सुख की उपलब्धि हो सकती है और निज स्वरूप के प्रकट होने से विश्व के सामने भी समता-सिद्धात का सही रूप आ सकता है। यदि इस प्रकार का चिन्तन चला तो उसका श्रेयमार्ग में समावेश होगा और वह आध्यात्मिक शक्तियो को भलीभाति समझ सकेगा तथा अध्यात्म शब्द के निर्विकल्प अर्थ को ग्रहण करेगा।

आत्मा के सद्भाव में मेरी काया की यह रौनक है, जिसकी उपस्थिति मे मैं सुख-दु ख का सवेदन कर रहा हू, जिसके रहने पर मैं पुरुषार्थ कर सकता हू, वह तत्त्व निश्चित है, दिव्य-रूप है, अमर है। उसको मैं कभी भी विस्मृत नही करू। यदि उसने इस प्रकार का अर्थ अध्यात्म शब्द से ग्रहण किया तो वह व्यक्ति अवश्य आध्यात्मिक शक्ति की ओर बढ सकता है। इसीलिए कविता मे सकेत है कि—

'शब्द अध्यातम अर्थ सुणीने निर्विकल्प आदरजो रे।'

निर्विकल्प का मतलब यह है कि सशय-रहित होकर उस तत्त्व को ग्रहण करो। यदि कोई इस सशय मे पडा कि मेरी आत्मा है या नही ? मैं जो शुभ कर्म कर रहा हू, इसका फल मुझे मिलेगा या नही, परलोक है या नही, आत्मशक्ति का सुख है या नही, परमात्मा है या नही तो ये सब विकल्प है। ये विकल्प मोहजनित है, अज्ञान से परिपूरित है। इनमे उलझने वाली आत्मा निर्विकल्प अर्थ को ग्रहण नही कर सकती है। इसलिए सबसे पहिले अध्यात्म शब्द सुनते ही मन मे सशय-रहित भावना पैदा हो जाए कि अध्यात्म शब्द का अर्थ यह है कि इस शरीर-पिंड मे रहने वाली मेरी आत्मा भूतकाल मे थी, वर्तमान मे है और भविष्य मे रहेगी। जो त्रिकाल अबाधित तत्त्व है, वह मेरा है और वही अध्यात्मजीवन का मूल है। इस प्रकार अध्यात्म शब्द को ग्रहण किया गया तो इन्सान जीवन की सभी विषमताओ का शमन करने के लिए तत्पर होगा। फिर उसकी अवस्था सिर्फ शब्द तक सीमित नही रहेगी।

सब मे रहने वाली आत्मायें योग्यता की दृष्टि से समान हैं परन्तु उन आत्माओ ने क्वचित् अर्थ को ही ग्रहण किया, अत विचित्रता पैदा हुई। यदि ससार की सभी आत्माये सासारिक पदार्थों मे न उलझ कर अध्यात्म जीवन के पूर्ण लक्ष्य को ग्रहण करे और ऐसा चिन्तन करे कि जितनी भी आत्माये है, वे सव मेरी जैसी आत्माये है, मेरे तुल्य है, तभी कल्याण हो सकता है। दूसरे शब्दो मे कहा जाए तो योग्यता की दृष्टि से वे परमात्मा के तुल्य है और जव ऐसी स्थिति है तो इन आत्माओ के साथ मै द्वन्द्व क्यो करू, धोखेवाजी क्यो करु ? यदि मैं आध्यात्मिक जीवन की दृष्टि से चिन्तन नही करता हूँ तो मैं परमात्मा के साथ धोखा करता हू। मैं मनुष्य को नही ठगता हू परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से परमात्मा को ठगता हू। मै अपने पडौसियो को धोखा देकर प्रसन्न होता हू तो आध्यात्मिक दृष्टि का चिन्तन मुझे वताता है कि तू आध्यात्मिक नही है, भौतिक है। तू पडौसियो को अपने तुल्य नही समझ रहा है। यदि समाज की विपमता को देखकर कोई खुश होता है तो समझना चाहिए कि वह भौतिक है आध्यात्मिक नही हे, अज्ञानी है। समाज मेरे भाइयो का समूह है। मैं अपनी हवेली मे बैठ कर गुलछर्रे उडाता हू और यह सोचता हूँ कि मेरे पास तो पक्का मकान है, तीन मजिली हवेली है, मै तो सव तरह से सुखी रह सकता हू। मेरे पास मे रहने वाले गरीवो की झोपडिया भले ही जले, नष्ट हो, मेरा क्या बिगडता है। यदि इस प्रकार का चितन है तो यह वहुत बडे अज्ञान का चिन्तन है। वह नही सोच पाता है कि यह हवेली बनाई किसने है ? इसको बनाने वाले कौन है ? क्या स्वय मेहनत करके बनाई है यह हवेली ? इसके निर्माण मे उसने अपने शरीर का श्रम लगाया है या श्रम करने वाले दूसरे है ? जिन्होने श्रम करके हवेली को बनाया है, वे व्यक्ति झोपडियो मे रह रहे है। उनको कितना क्या कष्ट हो रहा है, आवश्यक सामग्री भी उनको मिल रही है या नही, उनकी दशा कैसी है ? यदि वे इसमे सहयोग नही देते तो तीसरी

मजिल पर नहीं बैठा जा सकता था। तीसरी मजिल पर बैठाने का श्रेय किसी को है तो उन श्रम करने वाले व्यक्तियो को ही है। याद रखना चाहिए कि पडौसियो और श्रम करने वालो के साथ आत्मीयता का व्यवहार नही रखा तो आप भी क्या सुरक्षित रह सकेगे ?

आज हिन्दुस्तान की दशा बडी विचित्र है। जिस देश का अधिकाश भाग गावो मे रह रहा है, उन ग्रामीण व्यक्तियो की दशा क्या है ? वे क्या सोच रहे हैं ? वे जैसे-तैसे अपने पेट पर पट्टी बाध कर जीवन विता रहे हैं ? इनके जीवन की दशा दयनीय हो रही है। परन्तु यह सब देखने-सोचने की फुर्सत किसको है ? कहावत है—"मरे जो दूजा, हम कराये पूजा।" दूसरे लोगो की कैसी भी दशा हो, हमको इसकी कोई परवाह नही। हमारा उनके साथ कोई सबन्ध नही। परन्तु हमारा ऐसा सोचना ज्ञान के साथ है या अज्ञान के साथ है ? क्या इन भाइयो के साथ हमारा कोई सबन्ध नही है ? वे भाई जिस रोज सबन्ध नही रखेंगे, उस दिन ज्ञात होगा कि हमारी क्या दशा बन रही है ? हमे जिन्दा रहने का अवसर तभी मिलेगा, जब उन व्यक्तियो के साथ आत्मीय-सबन्ध बनाये रखेंगे। भले ही आज वे आर्थिक दृष्टि से कमजोर हैं परन्तु सब हमारे साथी हैं। इनके साथ हर व्यक्ति की आत्मीय भावना होनी चाहिए और चिन्तन करना चाहिए कि ये मेरे भाई है, मैं इनका भाई हू।

आज के अधिकाश भाई यही सोचते है कि मजदूरी का काम तो मजदूरो का है। हम मेहनत-मजदूरी क्यो करें ? यह व्यर्थ का बडप्पन मध्यम-वर्ग मे विशेष रूप से देखने मे आता है। अरे ! मजदूरी करना कोई छोटा काम नही है। इस झूठी प्रतिष्ठा के भ्रम मे फसे हुए मध्यम-वर्ग की स्थिति क्या है ? यह वर्ग बडी बुरी तरह से पिसा जा रहा है। उसकी आमदनी के जरिए टूट रहे हैं और दो पाटो के वीच मे जैसे दाने पिस जाते है, वैसे ही मध्यम-वर्ग पिसा जा रहा है। ऐसी दयनीय स्थिति मे भी मध्यम-वर्ग अपनी झूठी इज्जत को लेकर चल रहा है और अभी तक भी इस वर्ग मे जागृति नही आई है। इसने कुरीतियो

का भारी बोझ बढा लिया है और व्यर्थ के कार्यो मे फिजूल खर्च कर रहा है। कष्ट पाते हुए भी यह कुछ नही विचार रहा है । अरे ! लौकिक रीति-रिवाजो की बात तो दूर रही परन्तु आत्मशुद्धि के लिए की जाने वाली तपस्याओ के पीछे भी झूठी प्रतिष्ठा और कुरीति का भूत लग गया है। कोई वहिन तपस्या कर रही है । उसने अठाई आदि कर ली तो उसके पीछे भी कितना क्या किया जाता है, उसका हिसाब आप जानते होगे। तपस्या तो आत्मशुद्धि के लिए होती है, परन्तु उसके पीछे भी बडे-बडे आडम्बर होने लगे है। यह भी क्या तपस्या है ? ऐसी स्थिति कभी पैदा नही करनी चाहिये ।

चाहे कोई बडे-से-बडा आदमी भी क्यो न हो, वह ऐसा अभिमान न करे कि मै बडा हो गया हू, अत छोटो की परवाह क्यो करू ? यदि इस प्रकार का विचार रहा तो यह बडप्पन कब तक टिकेगा ? आज के मनुष्य को अपना चिन्तन करना है। आज उसकी दशा बदल रही है । उसका कर्म बदल रहा है। आज के मानव के जीवन का सारा नक्शा ही बदल रहा है । परन्तु वह अपने कर्तव्य को भूल रहा है। लेकिन ध्यान रखना चाहिए कि यदि आज का मानव समता-सिद्धात पर आरूढ नही हुआ तो उसकी दशा बडी दयनीय हो जायेगी । यदि आज उसका कोई सहारा है तो अध्यात्म ही है। हमे उसका ही चिन्तन करना चाहिये । हमारे पास यदि कोई चीज है तो—

> यो नो वास्ति तु शक्तिसाधनचयो, न्यूनोऽधिकश्चाथवा ।
> भाग न्यूनतम हि तस्य विदधेमात्मप्रसादाय वै ।
> तत्पश्चादवशिष्टभागमखिल, त्यक्त्वा फलाशा हृदि ।
> तद्धीनेष्वभिलाषवत्सु वितरेमाङ्गीषु नित्य वयम् ।

प्रत्येक व्यक्ति को सोचना चाहिए कि मेरे पास सम्पत्ति का या शक्ति का जो कुछ सचय है, उसका स्वल्प-से-स्वल्प भाग मैं अपने लिए ग्रहण करू और जो कुछ शेष बचे, वह अन्य अभावग्रस्त व्यक्तियो के लिए समवितरण मे काम आए। मैं सब के साथ सहानुभूति रखते हुए

चलू। यदि इस प्रकार की भावना मानव के मस्तिष्क मे आ जाती है तो वह अध्यात्म के धरातल पर अपने आपको टिकाये रख सकता है और सकटग्रस्त दु खी व्यक्तियो के आसू भी पोछ सकता है । वह अध्यात्म-मार्ग, श्रेयमार्ग पर आरूढ हो सकता है । यदि वह इस प्रकार का चिन्तन नही करेगा तो स्वय आध्यात्मिक मार्ग से गिरेगा, साथ ही दूसरो को भी गिराने मे सहायक (निमित्त) बनेगा ।

कोई व्यक्ति कितना भी सपत्ति-सपन्न क्यो न हो, परन्तु उस सम्पत्ति को यदि कायम रखना है तो जितनी भी जनोपयोगी सामग्रिया हैं, उनके यथा-अवसर समवितरण मे आस्था होनी चाहिए । तभी समता-दर्शन की भूमिका पर आध्यात्मिकता का साकार रूप वन सकता है ।

अत आज के मानव चाहे वे किसी भी दशा मे हो, किसी के पास पैसे का धन हो, बुद्धि का धन हो, उन सबको अपने-अपने धन का सदुपयोग करना चाहिये । यदि अपने पडौस मे, गाव मे, राष्ट्र मे रहने वाले भाइयो के साथ सद्व्यवहार किया, समवितरण किया तो वधुओ तभी आपकी आध्यात्मिक सम्पत्ति सुरक्षित रहेगी ।

●●●

वीकानेर—

स० २०३०, श्रावण कृष्णा ७

भेद-अभेद-दृष्टि

वासुपूज्य जिन त्रिभुवन स्वामी, घननामी परनामी रे ।

वासुपूज्य परमात्मा के चरणो मे जिन भावो को अभिव्यक्त करने के लिए प्रार्थना की पक्तियो का उच्चारण किया गया है, उन भावो को अन्त करणपूर्वक समझने का प्रयास करे, जिससे कि परमात्मा का सही स्वरूप हमारे समक्ष आ सके । यदि उस आदर्श को समक्ष रखकर चलेगे तो हमारी स्वय प्रभु के तुल्य वनने की आकाक्षा भी उसमे गर्भित हो जाएगी ।

सर्वप्रथम परमात्मा के स्वरूप को समझना आवश्यक है । जव यह सचेतन आत्मा 'केवलज्ञान-युक्त जीवनमुक्त दशा को प्राप्त कर लेती है तब उसे साकार परमात्मा और जब वह सर्वथा शरीर-रहित वन जाती है तब उसे निराकार परमात्म-अवस्था कहते है । यह एक दृष्टि-कोण से व्याख्या है । इस विषय को कविता मे नय-दृष्टि से समझाया गया है । यहा दृष्टि का तात्पर्य विचारधारा है ।

प्रत्येक तत्त्व को समझने-समझाने के लिए कई दृष्टिया अपनानी पडती है । वे दृष्टिया कम-से-कम सात है । यदि इस सात दृष्टियो से उस वस्तु के स्वरूप को समझा गया तो उसका पूर्ण रूप समझ मे आ सकता है । और इन सातो दृष्टियो मे भी एक दूसरे के साथ अभिन्नता है, भिन्नता नही है ।

मात्र एक ही दृष्टि सर्वज्ञ के स्वरूप का प्रतिपादन नही कर सकती है । समझने की शक्ति ज्ञान मे है । उस ज्ञानशक्ति से समझने के लिए शास्त्रकारो ने सक्षिप्त रूप मे उसके दो भाग किए है—एक

द्रव्यार्थिक नय और दूसरा पर्यायार्थिक नय। फिर उसका विस्तार सात विभागो मे किया गया है। इन सात विभागो द्वारा यदि परमात्मा को समझने का प्रयास किया गया, आत्मा को समझने की कोशिश की गई, ससार के प्रत्येक पदार्थ को समझने, समझाने का प्रयत्न हुआ तो वे समग्र दृष्टिया सम बन जाती है और उससे आत्मा का समग्र रूप समझ मे आ जाता है।

आत्म-स्वरूप के साथ ज्ञान का सबध जोडना सर्वथा उपयुक्त होने से सात नयो की उन दृष्टियो को एक रूपक देकर समझा रहा हू। वह रूपक प्रसिद्ध ही है—

सात जन्माध अर्थात् जन्म से अन्धे, जिन्होने कभी किसी वस्तु को आखो से नही देखा, एक ही गाव मे रहते थे। गाव वालो से उन्होने सुना कि बस्ती मे हाथी आया है। उसको देखने के लिए सबकी जिज्ञासा प्रबल बनी। यह खबर उन अन्धो के कानो मे भी पहुँच गई। उन्होने सोचा कि हम भी हाथी को देखे। परन्तु उनके पास देखने का माध्यम अर्थात् नेत्रो का अभाव था। फिर भी उन्होने सोचा कि नेत्रो से न सही, वे हाथो के स्पर्श से ही हाथी को समझने की कोशिश करेंगे।

इसी भावना से वे सातो भी जहा हाथी था, वहा जा पहुँचे। वहा पहुँचकर उन्होने हाथी को हाथ लगाने शुरू किए। एक अधे के हाथ मे हाथी का पैर आ गया तो उसने चारो ओर से टटोल कर पैर को देख लिया और निश्चय कर लिया कि हाथी बडे थम्भे के समान होता है। दूसरे के हाथ हाथी की पीठ पर लग गये तो उसने सोचा कि वह चबूतरे सरीखा होता है। उसने भी निश्चय कर लिया कि मैंने हाथी को समझ लिया है। तीसरे अन्धे के हाथ मे हाथी की पूछ आई। वह कल्पना करने लगा कि हाथी रस्सी की तरह होता है और मैं इसे भलीभाति समझ गया हू। चौथे के हाथ मे हाथी के दात आ गए। उसने सोचा कि हाथी तो मूसल सरीखा होता है और उसका अन्य कोई स्वरूप नही है। एक के हाथ ने हाथी की सूड आ गई। उसने भी कल्पना कर ली

कि हाथी तो अजगर सरीखा होता है। एक का हाथ हाथी के उदर की ओर गया। उसने नीचे के पेट को टटोला था। वह सोचने लगा कि हाथी पाटिये सरीखा होता है। सातवे अधे के हाथ मे हाथी का कान आया। उसने निश्चय कर लिया कि हाथी छाजले के समान होता है।

इस प्रकार इन सातो अधो ने अपने हाथो के सहारे हाथी को परखा और फिर अपने स्थान पर पहुच कर वे उसके बारे मे चर्चा करने लगे। उनमे से एक बोला कि आप लोगो ने हाथी को देखा है, वह कैसा है ? सब बोल उठे—"हा, देखा है।" वह बोला—"अच्छा, बतलाओ कि वह कैसा है ?"

तब जिसने हाथी का पैर पकडा था, वह कहने लगा कि हाथी थभे सरीखा होता है। इस पर पीठ छूने वाला बोला, "तेरा कथन मिथ्या है। तू समझ नही पाया। हाथी तो चबूतरे सरीखा होता है। यह सुनते ही पूछ पकडने वाला उछल पडा और बोला, "तुम दोनो गलत बोल रहे हो। हाथी तो रस्सी जैसा होता है।"

इस पर दात को छूकर हाथी की जानकारी करने वाला उन तीनो की बात सुन कर बोला, "तुम बकवास करते हो। हाथी तो मूसल सरीखा होता है।" इतने मे ही सू ड छूने वाला बोला, "हाथी मूसल सरीखा नही, वह तो अजगर सरीखा होता है।" छठे अधे ने कहा, "अरे, हाथी तो पाटिये सरीखा है।" सातवा अधा बोल उठा, "नही, नही, वह तो छाजले जैसा है।"

इस प्रकार वे सातो अधे अपनी-अपनी बात पर ही जोर देते हुए एक-दूसरे से झगडने लगे। एक कहता था कि हाथी को मैने सही रूप मे देखा है और दूसरा कहता था कि मैंने उसे सही रूप मे देखा है। परन्तु उन्हे सही स्थिति समझाये कौन ?

इतने मे ही आखो वाला एक व्यक्ति उधर से निकला। उन सातो अधो को झगडते हुए देख कर वह कहने लगा, इस प्रकार से झगड़ा करके तुम हाथी के सही स्वरूप को नही समझ सकते। तुम्हारे

नेत्र नही हैं और इसी कारण यह झगडा हो रहा है। हाथी के एक-एक अग को छूकर ही आप अपनी-अपनी समझ के अनुसार बोल रहे है और मात्र एक-एक वात पर ही वल दे रहे है कि हाथी तो रस्सी, मूसल, थभा, छाजला, चबूतरा, अजगर और पाटिये सरीखा ही है। ये तो उसके अवयव हैं और इनमे से कोई एक समग्र हाथी नही है।

अत मे उस समझदार व्यक्ति ने प्रकट किया कि तुम सातो का कहना यदि अपेक्षा-दृष्टि से है तो सही है और यदि तुम अपेक्षा-दृष्टि को छोड कर एकान्तरूप से कथन कर रहे हो तो वह मिथ्या है। इस मिथ्या-दृष्टि से तुम वास्तविक तत्त्व को समझ नही पाओगे।

बधुओ, यह रूपक तात्त्विक-दृष्टि को समझाने के लिए है। प्रभु के विपय मे मनुष्य यदि एकागी चिन्तन करे और एक ही दृष्टि से उनका एक-एक रूप देखे तो प्रभु का समग्र स्वरूप दृष्टि मे नही आ सकता है क्योकि प्रभु तो अनन्त शक्ति-सम्पन्न है। यदि अनन्त दृष्टि से देखेगे तो अनन्त की गिनती नही कर सकते है। किन्तु उनका विभाग करके आप सात नय-दृष्टियो से परमात्मा के शुद्ध स्वरूप को समझने का प्रयास करेंगे तो भगवान का सही स्वरूप ठीक तरह से समझ पाएगे। उनमे से दो दृष्टिकोण मैं आपके सामने रख रहा हू। कवि ने कहा है कि—

'निराकर साकार सचेतन .. . .. ।'

प्रभु के स्वरूप को समझाने के लिए एक दृष्टिकोण दो धाराओ मे वह रहा है—एक सामान्य ज्ञानधारा (निराकार) और एक विशेष ज्ञानधारा (साकार)। निराकार की दृष्टि अनेक दृष्टियो से प्रतिवद्ध हो रही है। अभेद ग्राहक एक नय है, जिसको सग्रहनय कहते है। सग्रहनय की दृष्टि सामान्य को ग्रहण करती है, वह विशेप भेद नही करती है। इसीलिए अभेद (सग्रह) नय यह कहता है कि 'एगे आया' अर्थात् आत्मा एक है। आत्मा एक ही है, ऐसा वह नही कहता है। आत्मा एक है, इसमे सग्रहनय की दृष्टि है। अभेद नय से आत्मा के समग्र तत्त्वो (गुणो) की दृष्टि से आप ऐसा कह सकते हैं। परन्तु समग्र दृष्टि से 'एक

ही है' यह गलत है। आत्मा अनेक भी है, यह सत्य है। वैसे ही—'एगे सिद्धा', परमात्मा एक है। यह अभेद दृष्टि है। परमात्मा के अनन्त स्वरूपो को एक स्वरूप मे आप सग्रहनय की दृष्टि से ग्रहण कर सकते है। इसलिए कि यह दृष्टि अभेद ग्राहक है। वह निराकार है, उसके स्वरूप का विश्लेषण नही कर सकते है किन्तु सामान्य रूप से जान सकते है। इसमे भेद नही हो सकता है। इसलिए वह निराकार दृष्टि है। जैसे मनुष्य जाति एक है। अब मनुष्य जाति एक है तो इस शब्द मे कौन मनुष्य बाकी रहेगा ? हिन्दुस्तान के सभी मनुष्य आए या नही ? क्या कोई बाकी रह गया ? हिन्दुस्तान, पाकिस्तान, रूस, अमेरिका, इगलैड, जर्मनी, जापान आदि कही का भी मनुष्य बाकी नही रहा। मनुष्य कहने से सबका ग्रहण हो गया। यह कथन सामान्य दृष्टि से, अभेद-ग्राह्य दृष्टि से है। परन्तु मनुष्यो का जब भेद करेगे, तब व्यवहार नय की दृष्टि से भेद होगा। मनुष्य अनेक हैं तो उनकी आकृतिया भी अलग-अलग है। इसीलिए मनुष्यो की गिनती होती है—एक, दो, तीन, चार आदि। मनुष्य एक है और अनेक है। एक मे सबका ग्रहण और अनेक मे सबका विभक्तिकरण है। सग्रहनय की दृष्टि से मनुष्य एक है, ऐसा कहना गलत नही है, परन्तु व्यवहारनय की दृष्टि से मनुष्य अनेक है, ऐसा कहना भी गलत नही है। इस दृष्टि से चिन्तन किया जाए तो मनुष्यो मे द्वन्द्व नही होगा। इसी तरह सग्रहनय की दृष्टि से परमात्मा एक है और व्यवहारनय की दृष्टि से अनेक है। अत उसको निराकार और साकार कहेगे तो कोई द्वन्द्व, भेद नही होगा और हम परमात्मा के स्वरूप को सही तरीके से समझ लेगे, तभी आत्मा के स्वरूप को सही तरीके से समझ पाएगे।

बधुओ, दार्शनिक बात वडी गहरी होती है। परन्तु मै कहूगा कि यदि आप परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को और परमात्मा के मार्ग को पाना चाहते है तो आपको इन बातो को समझना होगा। आज नही तो कल समझना होगा।

यह बात सही है कि जो व्यक्ति सदा हलका भोजन करता है,

उसकी जठराग्नि कमजोर पड जाती है । यदि वह सहसा गरिष्ठ भोजन कर ले तो उसे पचा नही सकेगा । इसके विपरीत जो व्यक्ति हलकी और भारी सव चीजो को खाने का मुहावरा रखता है, वह सवको पचा लेता है । जैसी यह भोजन पचाने की स्थिति है, वैसी ही मस्तिष्क की स्थिति है । अधिकाश व्यक्ति सहज चीजो को—कथा अथवा दृष्टात को जल्दी ग्रहण करने की स्थिति मे रहते हैं । परन्तु यदि आप केवल कथाभाग मे ही रस लेगे और उसके साथ ही यदि दार्शनिक तत्त्व समझने का प्रयास नही करेगे तो आपका आतरिक जीवन परिपुष्ट नही हो पाएगा । इन चीजो का मुहावरा कम है तो इसका अभ्यास वढाये । इनको समझने का प्रयास करे । इस प्रकार से प्रयास किया तो आत्मा की आतरिक स्थिति उल्लसित होगी और वाह्य स्थिति सुधरेगी और जव स्थिति सुधरेगी तो मानव-समुदाय के साथ शाति से रहना सीखेगे ।

आज मनुष्य लड क्यो रहा है ? एक दृष्टि से देखा जाए तो मनुष्यो मे सही ज्ञान नही है ? मनुष्य-जन्म तो पा लिया परन्तु मनुष्य क्यो है, क्या है, इसका ज्ञान न होने से अपने ही भाइयो से टकरा रहा है । एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को शत्रु समझ रहा है—यह मेरा प्रतिपक्षी है, दुश्मन है । अरे, कौन है दुश्मन ? तुम्हारी कलुषित मानसिक वृत्ति ही तुम्हारी दुश्मन है । जैसे एक व्यक्ति दूसरे को दुश्मन समझता है, वैसे ही दूसरा तीसरे को और तीसरा चौथे को समझता है । ऐसा करते-करते मनुष्य शाति से रहना भूल जाते है । यहा तक कि परिवार मे भी अशातिमय द्वद्व पैदा हो जाता है और लोग भेद-अभेद की दृष्टि छोड कर लडने लग जाते है । इस प्रकार लडाई-झगडे मे यह जिन्दगी कुत्ते-विल्ली की तरह व्यर्थ ही चली जाएगी । आप शाति से चिन्तन कीजिए । यह जिन्दगी कुत्ते-विल्ली की तरह विताने को नही मिली है । यदि छोटी-छोटी वातो के लिए मन मे गाठ वाधकर चले और व्यक्ति, परिवार, समाज के हित को ध्यान मे नही रखा तो क्या यह भी कोई जीवन है ? यह वृत्ति तो पशुओ मे भी नही होती

है। वे भी टोली बनाकर चलते है। उनमे द्वेष और ईर्ष्या की आग नही सुलगती है। नमे प्राय बडा प्रेम और स्नेह रहता है। एक ही टोले के पशुओ मे कितनी हमदर्दी है, उसकी कल्पना जगली पशुओ को देखकर करे तो आप आश्चर्य मे पड जाएगे।

मैंने सुना है कि चँवर के शौकीन कई व्यक्ति चँवरी गाय की पूछ के बाल लाने के लिए जगली लोगो को ठेका दे देते है और वे जगली लोग पैसो के लालच मे आकर चँवरी गायो के विश्राम करने के स्थानो पर वृक्षो पर चढ कर बैठ जाते है। उस समय वे निर्दयी लोग निशाना बाध कर उन गायो की पूछ पर शस्त्र प्रहार करते है, जिससे उनकी पूछे कट जाती है और वे चिल्ला कर भागती है। यह भी सुना गया है कि पूछ कट जाने से उन्हे इतनी वेदना होती है कि उनके प्राण नही बच पाते। ठेकेदार लोग लालच मे आकर धोखे से उनकी पूछ काटने का काम करते है। यदि कोई व्यक्ति चँवरी गाय के सम्मुख जाकर उसकी पूछ काटने का प्रयास करे तो वे ऐसे व्यक्ति को कभी अपने पास तक नही फटकने देगी। मनुष्य ही क्यो, यदि जगली हाथी या शेर भी आ जाए तो वे सब अपनी रक्षा के लिए व्यूह बना लेती है और अपने बच्चो को बीच मे लेकर खडी हो जाती है।

जगली पशुओ का समूह देखिए अथवा पक्षियो का समूह देखिए कि वे एक-दूसरे के प्रति कितनी सहृदयता और समभाव की वृत्ति रखते है। एक-दूसरे की रक्षा के लिए वे कैसे तैयार रहते है। वहा द्वेष की भावना नही है। कोई प्रसग आ गया तो सब एकमत होकर चलते है। उनमे एकत्व की भावना है।

क्या ऐसी भावना आज मनुष्यो मे है? आप सोचे और समझे। फिर आज के मानव की दुर्दशा देखे। आज लोग अपने घर मे, परिवार मे, समाज मे और राष्ट्र मे लडने को तैयार रहते है और आपस मे दुश्मन बन जाते है। इससे कितना नुकसान हो रहा है, इस विषय मे उनका जरा भी ध्यान नही है। परिवार, समाज, राष्ट्र मे कैसी

खाई पड रही है, कितना अहित हो रहा है, इसका उन्हे जरा भी ध्यान नही रहता है। वे तो परिवार, समाज और राष्ट्र को क्षति पहुचाने के लिए तैयार हैं और जो व्यक्ति परिवार आदि को नष्ट करने के लिए तैयार है तो क्या ऐसे मनुष्यो को मनुष्य कहे ? क्या उन्हे समदृष्टि कहे ? आप ही फैसला करें। आप सब मौन धारण करके सुन रहे हैं और सोच रहे है कि यह बात तो हम पर भी लागू होती है । इस प्रकार की प्रवृत्ति छोडने के योग्य है ।

यह मनुष्य-तन कभी-कभी ही मिलता है। यदि मनुष्यो मे परस्पर प्रेम नही रहा और ईर्ष्या-द्वेष का त्याग नही किया तो यह मनुष्य का जीवन मिलना और न मिलना बराबर है। इससे तो पशु का जीवन ही ठीक कहा जा सकता है ।

शरीर की दृष्टि से मनुष्य जाति का समुदाय एक है । परन्तु आज का मानव शरीर तक ही सीमित नही रहा है। उसने वर्णभेद की भी दीवारे खडी कर दी है—ये काले मनुष्य है और ये गोरे मनुष्य है । अरे, कोई चमडी का काला या गोरा है तो इससे क्या मनुष्य की आत्मा मे भी भेद आ गया ? यह छूत है और यह अछूत है। किसको छूत-अछूत समझते हो ? उसके पीछे कोई सिद्धात है क्या ? यदि आपने अछूत को छू लिया तो क्या अछूत हो गए ? फिर स्नान करोगे तो पवित्र और यदि नही करोगे तो क्या अपवित्र रहोगे ? क्या पानी अछूतपन को धो डालता है ?

जो हिन्दुस्तान अखण्ड था, उसके टुकडे-टुकडे हो गए । अब और कितने टुकडे करना चाहते हो ? आज अलग-अलग गुट या पार्टिया बन गई हैं। वे चाहे राजनीति की दृष्टि से हो या अन्य किसी दृष्टि से हो, परन्तु वे भेद की दृष्टि ही अपना रही है । वे आत्मा और परमात्मा के स्वरूप को नही समझ रही है । वे अपने ही भाइयो को आपस मे टकरा रही हैं । किन्तु मानव यदि भेद और अभेद दोनों दृष्टि अपना कर चलता रहे तो भिन्नता नही आ सकती । अत दोनो दृष्टियो से समभाव

के साथ चलने का प्रयास करेंगे तो आत्मा के स्वरूप को समझ सकते हैं।

आज से अढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान महावीर के जीवन-चरित्र को देखते है तो पता चलता है कि उनका स्वय का जन्म क्षत्रिय-कुल मे हुआ था। वे क्षत्रिय राजकुमार थे। उनके गणधरो को देखिए तो गौतम स्वामी ब्राह्मण-कुल मे जन्म लेने वाले दिग्गज विद्वान और चारो वेदो के पाठी थे। सुधर्मास्वामी भी ब्राह्मण-जाति मे जन्म लेने वाले थे। धन्ना शालिभद्र का जिक्र सुनते है तो वे वैश्य-जाति के थे। अर्जुन माली और हरिकेशी श्रमण सरीखे व्यक्ति जाति से शूद्र थे। परन्तु उनका गुण और कर्म एक हो गया था। वे एकरूप मे चलने लगे। गुण और कर्म द्वारा वहा कृत्रिम जाति-भेद नही रहा। किन्तु—

कम्मुणा बभणो होई, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होई, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥

आप कह सकते हैं कि यह तो बहुत पुरानी बात है। क्या वर्तमान मे ऐसी समानता प्रकट हुई है? ऐसी समानता कुछ तो हुई है और कुछ आगे भी हो सकती है।

आपने अभी गाधी-युग देखा है। मैं गाधीजी के समग्र जीवन की बात नही कहता हू। उन्होने स्वतन्त्रता प्राप्त करने की दृष्टि से अहिसा और सत्य की भावना अपनाई। वे मानव-भावना के साथ चले। उन्होने छुआछूत त्यागने को कहा। वे स्वय मोड जाति के बनिये थे। परन्तु उनके साथ प० जवाहरलाल नेहरू काश्मीरी ब्राह्मण थे, मौलाना आजाद और खान अब्दुल गफ्फार खा मुसलमान थे। विनोबा भावे महाराष्ट्रीय ब्राह्मण है। जमनालाल बजाज सरीखे वैश्य भी थे। ये सब के सब गाधीजी के साथ घुलमिल गए। परन्तु यह स्थिति तभी बनी जबकि गुणो के साथ अभेद दृष्टि रखी गई। व्यक्तियो मे यद्यपि भेद था, परन्तु ऐसा होने पर भी गुणो की दृष्टि से समानता थी। गुणो का उन्होने थोडा-सा अश ग्रहण करके देश के सामने एक आदर्श उपस्थित कर दिया।

आज का मानव तो माग कर रहा है। वह कह रहा है कि मानव अपने जीवन मे मानवता लाये और मानव-मानव की आत्मा को समझने का प्रयास करे। अभेद दृष्टि से मनुष्य एक भी है और भेद-दृष्टि से अनेक भी है। इसी तरह परमात्मा एक भी है और अनेक भी है। इसलिए परस्पर सघर्ष मत करो। मानव यदि समन्वय की दृष्टि से चले तो शाति का अनुभव कर सकता है।

●●●

बीकानेर—

स० २०३०, श्रावण कृष्णा ११

सत्-चित्-आनंद

वासुपूज्यजिन त्रिभुवन स्वामी घननामी परनामी रे ।

परमात्मा के चरणो मे भव्यात्माओ का अतर्नाद किसी-न-किसी माध्यम से प्रकट हो जाया करता है । भव्यात्माये जब प्रभु का दर्शन अपने अन्त करण मे करने का सकल्प करती है तो प्रभु को स्मृति-पटल पर लाने का उनका प्रयास निरन्तर चालू रहता है और अतश्चेतना मे एक हूक पैदा हो जाती है ।

इस दृश्य जगत् मे अनेको प्राणी अपनी विविध क्रियाओ द्वारा कार्य कर रहे है, परन्तु उन्हे प्रभु के दर्शन नही हो रहे है । इस आत्मा ने अनादिकाल से ससार के पदार्थों का अनुभव किया है और करती ही चली जा रही है । परन्तु इन नाशवान पदार्थों के बीच उस अविनाशी तत्त्व का अश भी दृष्टिगत नही हो रहा है । परमात्मा का स्वरूप कहा है ? कितनी दूर है ? उनको कैसे पाया जाये ? इन सब प्रश्नो का हल एक ही स्थल पर हो सकता है । दूर जाने की आवश्यकता नही, किसी और स्थान का अवलोकन करने की भी आवश्यकता नही है । किन्तु जहा यह प्रश्न उठ रहा है, वही प्रश्नकर्ता स्वय प्रश्नकर्ता को देख लेता है तो उसकी जिज्ञासा शात हो जाती है । परन्तु प्रश्नकर्ता स्वय के स्वरूप को नही देख पा रहा है । जहा से प्रश्न का आविर्भाव हो रहा है, उस भूमिका के दर्शन यदि कर लिए जाये तो परमात्मा कहा है, आत्मा कहा है—इन दोनो प्रश्नो का हल एक ही साथ हो जायेगा । यह प्रश्न-कर्ता इस शरीर के अदर है, बाहर नही है । आतरिक शक्ति को नही पहिचानने के कारण ही बाह्य दृष्टि उसके समक्ष है । अतर्जीवन के

महत्त्व का मूल्यांकन भलीभांति नही होने से ही नाशवान तत्त्वो का मूल्यांकन किया जा रहा है। वह अंदर की दिव्य-शक्ति चेतना(ज्ञान)रूप है। इसके एक ओर सत् तथा दूसरी ओर आनन्द ये दो अवस्थाये और हैं अर्थात् सत्-चित् और आनन्द इनके बीच का तत्त्व चित् है। बीच की अवस्था को यदि समझ ले तो सत् भी देख सकते है और आनन्द भी प्राप्त कर सकते है। लेकिन बीच के तत्त्व को यदि नही पकडा तो न सत् पा सकते हैं और न आनन्द का अनुभव कर सकते हैं। परमात्मा का समग्र स्वरूप सत्-चित् और आनन्द रूप है।

सत् का तात्पर्य है—'कालत्रय तिष्ठतीति सत्।' तीनो काल मे जिसका अवस्थान हो, तीनो काल मे जो स्थायी रहता हो, वही सत् है। भूतकाल मे जिसका अस्तित्व हो, वर्तमान मे भी हो और भविष्य मे भी रहे, ये तीनो अवस्थाये काल की दृष्टि से जिस तत्त्व की रहती है, वही तत्त्व सत् कहला सकता है। परन्तु सिर्फ कालकृत इन तीन अवस्थाओ के रहने पर भी आनन्द और चित् की अनुभूति नही होती है क्योकि ये तीनो अवस्थायें तो आत्मा से शून्य जड-तत्त्व मे भी पाई जाती है। जैसे कि यह स्तम्भ भूतकाल मे था, वर्तमान मे है और भविष्य मे रहेगा। इसलिए त्रिकाल-स्थायी तो स्तम्भ भी है। यह बात दूसरी है कि लबे समय तक स्तम्भ एक स्तम्भ के रूप मे नही रह सकता है, क्योकि प्रतिसमय अवस्थाओ (पर्यायो) का परिवर्तन होता रहता है। परन्तु त्रिकालवर्ती जिन जड पदार्थों मे मिलकर यह स्तम्भ बना है, वे स्थायी है। उन्हे दार्शनिक भाषा मे परमाणु कहते हैं। यह कथन जैन-दार्शनिक दृष्टि से है। वैज्ञानिको ने भी परमाणु की परिभाषा की है। इस परिभाषा की शास्त्रीय दृष्टिकोण की परिभाषा और दार्शनिक क्षेत्र की परिभाषा के साथ समानता है। शास्त्रीय दृष्टि से इसको परमाणु (परम+अणु) कहा गया है—जिसके दो हिस्से नही हो सके। बौद्धिक दृष्टि से जिसका विभाग नही किया जा सके, ऐसे सूक्ष्मतम अणु को परमाणु कहा है। वैज्ञानिक क्षेत्र मे भी भौतिक विज्ञान-वेत्ताओ ने परमाणु की परिभाषा यही की है कि

जिसके दो हिस्से नही किए जा सके, वह परमाणु है। परन्तु भौतिक विज्ञान की आधारशिला प्रयोगात्मक है। वैज्ञानिको ने माइक्रोस्कोप (सूक्ष्मवीक्षण यत्र) से बारीक तत्त्व को देखा और उसको देख कर उन्होने अपनी काल्पनिक दृष्टि से निश्चय किया कि जिस बारीक अणु को देख लिया है, उसके टुकडे नही हो सकते है। अत जिसके टुकडे नही हो, वह परमाणु है। यह व्याख्या तो कर दी परन्तु जिस तत्त्व को देखकर यह व्याख्या की गई, वह तत्त्व जैन-शास्त्र की दृष्टि से अनन्त परमाणुओ का स्कध हो सकता है। लेकिन उन्होने उसको ही अपनी व्याख्या के अनुसार परमाणु समझ लिया। बाद मे जब उसको भी तोडने का प्रयास किया गया तो उन्हे मालूम हुआ कि जिसका हम टुकडा होना नही मानते थे, उसके भी टुकडे हो गए—उसके भी इलेक्ट्रोन, प्रोटोन, न्यूट्रोन आदि विभाग हो गए और फिर इनके भी अनेक टुकडे और हो गए। इससे यह सिद्ध हो गया कि वह अनन्त परमाणुओ का पिड था और वैज्ञानिक उसको प्रारम्भ मे समझ नही पाए थे।

वैज्ञानिक अपने सिद्धात के अनुसार प्रयोगशाला मे जितना निर्णय वर्तमान मे करता है, वह निर्णय भविष्य मे भी टिका रहेगा या नही, ऐसा विश्वास नही किया जा सकता है और न ही वैज्ञानिक स्वय उस पर विश्वास करते है। उनका कथन भी यही है कि वर्तमान मे जिन भौतिक साधनो से जो कुछ भी खोज की और उससे जो उपलब्ध हुआ, उसको ही हम कह रहे है। सभव है कि भविष्य मे हमारी यह धारणा भी गलत साबित हो जाए। ऐसा हुआ भी है। पूर्व के वैज्ञानिको ने निश्चयात्मक रूप से जिसका अनुभव किया और जिसे ससार के सामने रखा, वाद के वैज्ञानिको ने उसमे सशोधन कर दिया। इस प्रकार वैज्ञानिको ने प्रयोगशाला में किये गये अनुसधान की दृष्टि से जिस तत्त्व का निर्णय किया, वह निर्णय पूर्णतया अबाधित नही हुआ।

फिर भी वैज्ञानिक अपने अनुसधान कार्य मे निरतर लगे रहते है, परन्तु उनका दृष्टिकोण भौतिक पदार्थो का अनुसधान करते हुए भी

ऊब कर आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होने का है। भौतिक पदार्थो मे उन्हे जल्दी सफलता मिली और वे आगे बढ गए। उनकी उपलब्धि मे दुनिया को आश्चर्य हो गया। परन्तु स्वय वैज्ञानिक आश्चर्य-चकित नही है। वे तो अब भी सोच रहे हैं कि ये प्रयोग और आविष्कार हुए तो साधारण जनमानस भले ही इनको हौवा समझ ले परन्तु अभी वैज्ञानिक क्षेत्र की दृष्टि से विज्ञान की बचपन की-सी अवस्था है। वह अभी तरुणाई पर नही पहुचा है। जिस दिन वह तरुणाई की पूर्ण परिपक्वता पर पहुचेगा, उस दिन दुनिया की वर्तमान दशा मे परिवर्तन आकर स्थिरता आ सकती है। वैज्ञानिको का यह तटस्थ मस्तिष्क है। परन्तु आज के पाठकवृ द, विद्यार्थी और अखबारो को देखने वाले विचारवादी कुछ-कुछ बातो को लेकर उनको ही सर्वस्व समझ लेते है। यह बहुत बडी भ्राति की बात है। उनका मस्तिष्क भौतिकवादी बन गया है। वे यही चिंतन करते है कि इसके अतिरिक्त कुछ नही है, इसके अतिरिक्त कोई आनन्द का स्थान नही है। इस प्रकार से मस्तिष्क को एक बात के पीछे बाध देना, भौतिकता से चिपका देना, यह बहुत बडी हिंसा की अवस्था है। आज के मानवो को चाहिए कि वे अपने मस्तिष्क को खुला रखे और सोचे कि भौतिक-विज्ञान की उपलब्धि से प्राप्त विज्ञान यदि हमारे मस्तिष्क को बाध देता है तो हम जडी-भूत हो जाते है और इससे सत् तत्त्व क्या है—इसका पूरा पता नही लगा पाते है।

सत् क्या है और उसकी खोज कैसे की जाये? इसका संकेत किया जा रहा है। वैज्ञानिक भी इसकी खोज मे तत्पर है। परन्तु उन्होने जिसे परमाणु समझा, वह गलत निकला और अब भी वे उसकी खोज मे लगे हुए है। इधर आध्यात्मिक दृष्टि के वैज्ञानिक है। एक दृष्टि से कहा जाए तो सारा विज्ञान, चाहे वह भौतिक हो या आध्यात्मिक हो, परन्तु दोनो की मूल [illegible] अवस्था एक है। जिस शक्ति से भौतिक विज्ञान का आविष्कार हो रहा है, वह शक्ति तो आध्यात्मिक (अर्थात् आत्मा की) ही है। परन्तु अभी उसकी दृष्टि स्थूलता की ओर है, बाह्य

जगत् की ओर है। इसीलिये वह शक्ति भौतिक-विज्ञान कहलाती है। परन्तु वही शक्ति यदि अतरग की ओर मुड जाये तो आध्यात्मिकता की दशा पा लेती है। जिन आत्माओ ने अपनी शक्ति को अतरग की ओर मोडा है, उनकी अनेक उपलब्धिया हुई है, उन्होने समग्र जगत् को जाना है। नेत्र आदि पाचो इन्द्रियो के व्यापार को वद करके जिन्होने आतरिक शक्ति के माध्यम से परिपूर्ण तत्त्वो को पहिचाना है, वे सर्वज्ञ सर्वदर्शी हुए है। उन्होने अपने आध्यात्मिक विज्ञान की दृष्टि से अनुसधान करके ससार का जो स्वरूप वतलाया, सत् की जो व्याख्या की, परमाणु की जो व्याख्या की, उसे उन्होने अपने ज्ञान मे देखा है और स्थायी रूप से देखा है। उनका निर्णय है कि जिसके दो टुकडे नही हो सके, वह परमाणु है। वह त्रिकाल अबाधित है। परमाणु परिवर्तित होता है, रूपातरित होता है परन्तु नष्ट नही होता है। उसे सत् भी कहा है। वह भूतकाल मे था, वर्तमान मे है और भविष्य मे रहेगा। परमाणु की ऐसी व्याख्या जब सत् के साथ लागू होती है तो वह सत् तत्त्व अवश्य है परन्तु उसके साथ चित् नही। इसलिये जहा सत् तत्त्व होते हुए भी चित् नही तो वहा चेतना नही, आत्मा नही। इसीलिए आध्यात्मिक वैज्ञानिको ने आत्मा के लिये सत् के साथ चित् विशेषण और दिया और कहा कि सत् के साथ चित् भी होना चाहिये।

चित् का अर्थ चैतन्य है और उसका शुद्ध अर्थ है ज्ञान। ज्ञान उस तत्त्व से अलग नही है। ज्ञान उसका गुण है। वह ज्ञानवान सत् है और सत् का ज्ञाता कहलाता है। यदि वह ज्ञान की पूर्णता को प्राप्त कर लेता है, चरम सीमा को पा लेता है तो वह आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है। ये आत्मा की तीन अवस्थाये है—सत्, चित् और आनन्द। जो इन तीनो अवस्थाओ से परिपूर्ण है, वह परमात्मा है। और जो इनमे से दो अवस्थाओ—सत् और चित् से युक्त है, वह आत्मा है। उसमे भी पूर्णता प्राप्त करने का सामर्थ्य समाया हुआ है परन्तु अभी वह कर्मों से आच्छादित है। उस पर मोह और माया का आवरण लगा हुआ है वह अपने आनन्द को

पाने के लिये छटपटा रही है। वह देखती है कि मेरा प्रिय आनन्द कहा है ? वह इस आनन्द की खोज में जहा भी राह मिलती है, वही बढती है । उसको पता लगा कि अमुक वस्तु मे आनन्द है तो अपने समस्त जीवन की शक्ति लगाकर वह उस स्थान पर पहुँचने की कोशिश करती है, क्योकि वह आनन्द की भूखी है । परन्तु वहा पहुँचने पर भी कष्ट मिलता है और आनन्द की उपलब्धि नही हो पाती है, तब वह घबरा कर सोचती है कि यहा आनन्द नही है, पहाड की चोटी पर आनन्द है। लेकिन पहाड के इर्द-गिर्द जगली-जतु हैं और भयावने दृश्य है । वहा पहुँचना शक्य नही है । परन्तु उसे यह विश्वास हो जाता है कि पहाड की चोटी पर आनन्द की अनुभूति होने वाली है तो वह शरीर की भी परवाह नही करती है और पहाड की चोटी पर पहुँचने की कोशिश करती है। वहा पहुँचने पर भी आनन्द का अनुभव नही होता है। इसी प्रकार समुद्र की गहराइयो मे गोते लगाकर अथवा आकाश मे उडानें भर कर वह आनन्द प्राप्त करना चाहती है, लेकिन उसे वहा पर भी आनन्द नही मिलता है ।

यह सब तो मृगतृष्णा के पीछे भटकना है । जैसे ग्रीष्म-ऋतु मे मृग को प्यास सताने लगती है, तब वह पानी की खोज मे इधर-उधर दूर-दूर तक दृष्टि दौडाता है । रेतीले मैदान मे सूर्य की किरणो की चमक से उसे प्रतीत होता है कि वहा पानी हिलोरे ले रहा है । अत. वह सारी शक्ति लगा कर पानी पीने के लिए वहा पहुँचता है। लेकिन वह देखता है कि यहा तो पानी नही है । क्या मैं भ्राति में पड गया ? वह फिर दृष्टि दौडा कर देखता है तो ज्ञात होता है कि पानी तो पीछे रह गया है। वह फिर उसी तरफ दौड कर जाता है। लेकिन वहां पर भी वास्तविक पानी नही होने से उसकी सम्पूर्ण आशाओ पर पानी फिर जाता है । सूर्य की किरणो से रेतीले मैदानो मे पानी जैसा दृश्य दिखलाई देता है, उसको मृगतृष्णा की सज्ञा दी गई है ।

आखिर जैसे मृग पानी की खोज मे दौडता-दौडता अपने

आपको समाप्त कर देता है, वैसी ही दशा आज के अधिकाश मानवों की हो रही है। मनुष्य ज्ञान से युक्त है परन्तु उसका प्रयोग वह पाचो इन्द्रियों के विषय-सुख की प्राप्ति के लिये कर रहा है, जिनमे वास्तविक आनन्द नही है, सिर्फ लुभावने दृश्य दिखलाई देते है।

भौतिक पदार्थों के पीछे मनुष्य भटक रहा है और मानता है कि उनको प्राप्त करने के लिए चाहे जो साधन अपनाना पडे, भले ही खून-पसीना एक हो जाए, परन्तु कोई परवाह नही। उसे तो चाहिए चद चादी के टुकडे। वह सोचता है—इनको जितना इकट्ठा कर लूगा, उतना ही आनन्द मिलेगा। वह ऐसा कभी नही सोचता है कि जिन्होने काफी धन इकट्ठा कर लिया है, क्या उनको आनन्द मिल गया ?

आज भारतवासियो को दृष्टि भी पाश्चात्य जगत् की तरफ लगी हुई है। वे सोचते है कि अमेरिका वाले आनन्द मे होगे क्योकि उनके पास बहुत पैसा है। परन्तु पूछिए उनसे कि आप कितने आनन्द मे है ? सुख-शाति मे तो है ? बडी हवेलियो मे रहने वालो से भी पूछिए कि आपको सुख है या दु ख ? वे अपनी सारी शक्ति लगा करके मृगतृष्णा की तरफ भाग रहे है। वे नही सोचते है कि यह जीवन क्यो है और क्या है ? यद्यपि इन पदार्थो का सर्वथा निषेध नही किया जा सकता है, परन्तु इनसे ही आनन्द मान लेना और इनसे ही चिपक जाना, यह अज्ञान की दशा है। इसीसे आत्मा के आनन्द की शक्ति दब रही है और उसका ह्रास हो रहा है। आज के मानव को सोचना चाहिये कि मै पूरी शक्ति लगा कर इन पदार्थो को बटोर तो रहा हू परन्तु इनके साथ मेरा सबन्ध नही है। ये स्थायी नही है। दुनिया चाहे जिधर भी दौड रही हो, परन्तु क्या हम भी उधर ही भागते जाये ? दुनिया मे जिधर भी जाइए, उधर यही रट लग रही है हाय पैसा ! हाय पैसा ! हाय धन ! यदि धन मिल भी गया तो वह कितने दिन तक टिकेगा ? उससे आनन्द की कितनी अनुभूति होगी ? इसका चिंतन करना चाहिए और यदि चिंतन किया गया तो अनैतिकता की ओर

जीवन को नहीं ले जाते हुए सोचेंगे कि यह तो साधन है—साध्य नहीं है। साधन को सीमित रखना चाहिए। पेट की पूर्ति तो हर कोई कर सकता है। मनुष्य ही करता है, केवल यही बात नहीं है। मनुष्य करता है तो उसमे क्या विशेष बात है? पक्षी के पास तो केवल एक चोंच होती है परन्तु वह भी भूखा नहीं रहता है और परिवार का पोषण भी करता है। पशु भी अपना कार्य करते हैं। परन्तु मानव के पास तो दो हाथ, दो पैर और विकसित मस्तिष्क है। क्या वह भूखा रह सकेगा?

अरे, भूख पेट की नहीं, परन्तु पेटी की है। उसके लिये इन्सान अपनी शक्ति को कहा लगा रहा है और कहा-कहा भागता फिर रहा है? यह पेटी की तृष्णा जल्दी से पूरी नहीं होती है। मनुष्य इसमे आनन्द का अनुभव करना चाहता है, इसलिए वह नैतिकता और अनैतिकता कुछ नहीं देखता है। जैसे कोई व्यक्ति सोचता है कि ईमानदारी से व्यापार करूगा तो थोड़े से पैसे पैदा होंगे। अत इसमे चालाकी की जाए ताकि पैसे ज्यादा मिल सकें। और वह वस्तु मे मिलावट करना चालू कर देता है। ग्राहक की आखो मे धूल डालने के लिए असली घी मे डालडा या अमुक जाति का तेल डालने की कोशिश करता है। इस मिलावट की दृष्टि से व्यापारी अपनी आत्मा को कितनी मैली कर रहा है? वह सोच भी नहीं पा रहा है कि उसका जीवन मानवीय धरातल पर है या अमानवीय धरातल पर है? वह जीवन राक्षस का है या मनुष्य का है? यदि आप इसे गहराई से सोचेंगे तो प्रकट होगा कि जो व्यक्ति मिलावट करता है, वह अत्यन्त क्रूर और निर्दयी बन रहा है। कोई पैसे का गुलाम बनता है, तभी वस्तु मे मिलावट करता है। इससे मानव को कितना नुकसान होता है, इसका चिंतन नहीं करता है। जिसके साथ जिस पदार्थ का मेल नहीं है, यदि वह उसमे मिला दिया जाता है तो इस संयोग से जो पदार्थ बनता है, वह जहरीला बन जाता है। उस अनुचित संयोग से मानव-मानव के जीवन को कितनी क्षति पहुच रही है? इसका उसे ध्यान नहीं है। इस तरह से जो वस्तुओं में [

करता हैं, वह चाहे किसी प्रलोभन में आकर ऐसा करता हो परन्तु मैं अनुमान से चितन करता हू कि ऐसा करके वह मनुष्यो के लिए जहरीला काम करता है ऐसा व्यापारी या कोई व्यक्ति क्या वस्तुत' देश का ईमानदार और वफादार नागरिक है ? ऐसे आदमी क्या आत्मा की खोज कर पायेगे ? ऐसे व्यक्तियो के लिए क्या कुछ कहा जाए !

मैं सुनता हू कि जितनी ऊचे दर्जे की दवाइया भारत मे बनती है, उनमे भी बेईमानी चलती है । आज नकली दवाए बनने लगी है । अरे ! रोगी रोग से त्राण पाने के लिए दवा खरीदता है किन्तु निर्माता उन औषधियो को भी शुद्ध नही रहने देते है । मैने यह भी सुना है कि क्लोरोमाइसिन की गोलिया आदि को खोल कर दूकानदार बदल लेते हैं औरउनमे कुछ दूसरे तत्त्व डाल कर वे गोलिया दे दी जाती है, जिससे रोगी का जीवन खतरे मे पड जाता है, और कोई असर नही होता है । एक दृष्टि से देखा जाये तो रोगी और दवा मे मिलावट करने वाले आपस मे एक दूसरे के भाई है । यह व्यापारी का दोष है, व्यापार का नही । जब व्यापारी इस प्रकार की मिलावट और काला बाजार करते है तो अन्य नौकरी वाले भी उनसे पीछे नही है । वे भी दूसरे व्यापारी बनने की तैयारी कर रहे है । इस प्रकार की दुष्प्रवृत्ति इन्सान-इन्नान के बीच चले तो क्या वे मनुष्य है ? मै तो कहूगा कि वे मनुष्य से भी गए बीते है । वे पशु से भी बदतर है । पशु कम से कम ऐसा तो नही करता है । बधुओ ! वे मानवता के विरुद्ध कार्य करते है और अपनी आत्मा का पतन करने वाले है । और इसलिए ही कहना पड रहा है कि आज मनुष्य की दशा कितनी विषम है ? यही समाज की विपमता है ।

मैं सुनता हू कि विदेशो मे ऐसी प्रवृत्ति कम है । जो अपने देशवासी वहा जाकर आते है, वे वहा की ईमानदारी की तारीफ करते हुए कहते है कि क्या कहना है वहा की ईमानदारी का ! वहा दूकाने खुली है, लाखो का माल भरा पडा है । दूकान का स्वामी नही है,

ग्राहक आता है और बिना रोक-टोक दूकान मे प्रवेश करता है। उसे जो चीज चाहिए वह ले लेता है और ईमानदारी से वहा पैसे डाल कर चला जाता है। दूकान का मालिक आता है, माल को देखता है और पूरे पैसे प्राप्त कर लेता है। कहिए, क्या यह ईमानदारी यहा के नागरिको मे है ?

भगवती सूत्र मे तुगिया नगरी के श्रावको का वर्णन आया है कि वे कैसे थे ? बताया गया है कि उनके घर के द्वार सदा खुले रहते थे, अर्गलाये खुली रहती थी। इसका तात्पर्य यह है कि वे कभी भी अपने मकान का दरवाजा बद नही करते थे। इसमे कई रहस्य भरे हुए है। परन्तु आज वह वर्णन शास्त्रो मे ही रह गया है। आज के श्रावको की क्या दशा है ? आज के मनुष्यो की क्या अवस्था है ? क्या इसका चिंतन आज का मनुष्य कर पाएगा ?

मैं तो आध्यात्मिक बात रख रहा हू, आत्मा और परमात्मा की बात कह रहा हू। आप इस पर चिंतन करे और अपने जीवन मे उतारे। तभी आप सत्-चित्-आनदघन रूप आत्मा को समझ सकेगे, उसे पा सकेगे।

●●●

बीकानेर—

स० २०३०, श्रावण कृष्णा ३०

स्वतंत्रता का मूलाधार

धार तलवारनी सोहली, दोहली चोदमा जिन तणी चरणसेवा।

अनन्तनाथ परमात्मा चरम वीतराग अवस्था को प्राप्त कर चुके है। उन्होंने जिस मार्ग का निर्देश किया, वह मार्ग इस ससार मे श्रेयस्कर है। उस मार्ग को अपनाये विना भव्य प्राणियो का कल्याण होने वाला नही है।

वीतराग देव की स्तुति, परमात्मा की प्रार्थना कुछ मागने की दृष्टि से नही की जाती है। परन्तु प्रार्थना इस दृष्टि से उच्चारण की जाती है कि जीवन की परम पवित्र शुद्धि का प्रसग वने और आध्यात्मिक जीवन का चरम लक्ष्य सही तरीके से सध सके। यदि वे महापुरुष अपनी दिव्य साधना का फल जन-कल्याणार्थ वितरित नही करते तो आज की विचित्र दशा मे मानव की कैसी दुर्दशा होती, इसका वर्णन करना शक्य नही है। उन्होने आत्म-कल्याण तो प्राप्त किया ही परन्तु साथ ही भव्य जीवो के लिए भी जो पवित्र देशना प्रसारित की, उसका निष्कर्ष आज तक चला आ रहा है। ऐसे पवित्र पुरुषो का स्मरण उनके सिद्धात वाक्यो के कथन के पूर्व होना नितान्त आवश्यक है। इस दृष्टि से भी भव्यात्माओ को सबसे पहले परमात्मा की प्रार्थना मगलाचरण के रूप मे करनी ही चाहिये। परन्तु प्रार्थना के शब्दो तक ही हम सीमित नही रहे, उनके अन्दर रहने वाले मर्म का अनुसधान भी अवश्य करे। वह अनुसधान आत्म-शक्ति के साथ सबद्ध हो। अनुसधान सिर्फ दिखाने के लिए नही परन्तु जीवन की शोध के लिये हो। जीवन का परिमार्जन करने की भावना से जिनका अनुसधान निरन्तर

चलता रहता है, वे आत्मायें ही इस ससार में अपने जीवन को सुव्यवस्थित रख सकती हैं ।

वीतरागदेव ने जिस पवित्र आध्यात्मिक-मार्ग का निर्देश किया, वह मार्ग आत्मा की परम सुख-शाति के लिये ही है । यद्यपि मुख्य लक्ष्य सभी का एक है परन्तु उस लक्ष्य को रख कर चलने वाले सब प्राणी एक ही धरातल पर नही चल सकते है । उनका मार्ग शक्ति के अनुसार न्यूनाधिक रूप मे भिन्न हो सकता है । जहा साधु-साध्वियो के लिए निर्देश है कि वे अपने परिपूर्ण महाव्रतो का पालन करे और उनकी सुरक्षा करना उनके लिये नितान्त आवश्यक है, वहा श्रावक और श्राविकाओ के लिए भी उनकी मर्यादा के साथ जिस मार्ग का निर्देश है, उस मार्ग पर वे चलें । दोनो की सीमा अपनी-अपनी है परन्तु आध्यात्मिक लक्ष्य समान है । दोनो का उद्देश्य एक है । साधना की श्रेणियो मे भिन्नता है । वे छोटी और बडी हैं । इसका तात्पर्य यह नही कि दोनो का लक्ष्य भिन्न हो गया । साधु और साध्वी शीघ्रगति से चलने वाले है, जबकि श्रावक और श्राविकाए कुछ मथर गति से उसी आध्यात्मिक मार्ग पर अग्रसर होने वाले है । मुख्य लक्ष्य जब दोनो का एक बन जाता है तो वे जिस धरातल पर रहते है, उसका भी यथास्थान उनको ज्ञान होना चाहिए । जिस भू-मडल पर सयमी जीवन की आराधना सभावित है, उस भू-मडल सबन्धी वातावरण भी उसके अनुरूप रहना नितान्त आवश्यक है । यही कारण है कि भगवान महावीर ने आध्यात्मिक जीवन का मुख्य रूप से निर्देश करते हुए प्रसगोपात्त दस धर्मो का भी निर्देश किया है ।

श्रीमद् ठाणाग-सूत्र के दसवे ठाणे मे दस प्रकार के धर्मो का सकेत है । उसमे ग्राम-धर्म, नगर-धर्म, राष्ट्र-धर्म आदि गिनाते हुए श्रुत-धर्म और चारित्र-धर्म को अन्त मे रखा है । इसका तात्पर्य यह है कि श्रुत और चारित्र धर्म जिसका मुख्य लक्ष्य है ऐसा आध्यात्मिक साधक स्वय भी आराधना की दृष्टि से जिस ग्राम मे विचरण कर रहा है, उसमे यदि ग्राम-धर्म की सुव्यवस्था नही है अर्थात् वहा अराजकता का

स्वतंत्रता का मूलाधार

धार तलवारनी सोहली, दोहली चौदमा जिन तणी चरणसेवा ।

अनन्तनाथ परमात्मा चरम वीतराग अवस्था को प्राप्त कर चुके है । उन्होंने जिस मार्ग का निर्देश किया, वह मार्ग इस ससार मे श्रेयस्कर है । उस मार्ग को अपनाये विना भव्य प्राणियो का कल्याण होने वाला नही है ।

वीतराग देव की स्तुति, परमात्मा की प्रार्थना कुछ मागने की दृष्टि से नही की जाती है । परन्तु प्रार्थना इस दृष्टि से उच्चारण की जाती है कि जीवन की परम पवित्र शुद्धि का प्रसग वने और आध्यात्मिक जीवन का चरम लक्ष्य सही तरीके से सध सके । यदि वे महापुरुष अपनी दिव्य साधना का फल जन-कल्याणार्थ वितरित नही करते तो आज की विचित्र दशा मे मानव की कैसी दुर्दशा होती, इसका वर्णन करना शक्य नही है । उन्होने आत्म-कल्याण तो प्राप्त किया ही परन्तु साथ ही भव्य जीवो के लिए भी जो पवित्र देशना प्रसारित की, उसका निष्कर्ष आज तक चला आ रहा है । ऐसे पवित्र पुरुषो का स्मरण उनके सिद्धात वाक्यो के कथन के पूर्व होना नितान्त आवश्यक है । इस दृष्टि से भी भव्यात्माओ को सबसे पहले परमात्मा की प्रार्थना मगलाचरण के रूप मे करनी ही चाहिये । परन्तु प्रार्थना के शब्दो तक ही हम सीमित नही रहे, उनके अन्दर रहने वाले मर्म का अनुसधान भी अवश्य करे । वह अनुसधान आत्म-शक्ति के साथ सबद्ध हो । अनुसधान सिर्फ दिखाने के लिए नही परन्तु जीवन की शोध के लिये हो । जीवन का परिमार्जन करने की भावना से जिनका अनुसधान निरन्तर

चलता रहता है, वे आत्मायें ही इस संसार में अपने जीवन को सुव्यवस्थित रख सकती हैं ।

वीतरागदेव ने जिस पवित्र आध्यात्मिक-मार्ग का निर्देश किया, वह मार्ग आत्मा की परम सुख-शांति के लिये ही है । यद्यपि मुख्य लक्ष्य सभी का एक है परन्तु उस लक्ष्य को रख कर चलने वाले सब प्राणी एक ही धरातल पर नहीं चल सकते हैं। उनका मार्ग शक्ति के अनुसार न्यूनाधिक रूप में भिन्न हो सकता है । जहा साधु-साध्वियो के लिए निर्देश है कि वे अपने परिपूर्ण महाव्रतों का पालन करे और उनकी सुरक्षा करना उनके लिये नितान्त आवश्यक है, वहा श्रावक और श्राविकाओं के लिए भी उनकी मर्यादा के साथ जिस मार्ग का निर्देश है, उस मार्ग पर वे चलें । दोनों की सीमा अपनी-अपनी है परन्तु आध्यात्मिक लक्ष्य समान है। दोनो का उद्देश्य एक है । साधना की श्रेणियो मे भिन्नता है । वे छोटी और बडी है । इसका तात्पर्य यह नही कि दोनो का लक्ष्य भिन्न हो गया। साधु और साध्वी शीघ्रगति से चलने वाले हैं, जबकि श्रावक और श्राविकाए कुछ मथर गति से उसी आध्यात्मिक मार्ग पर अग्रसर होने वाले है। मुख्य लक्ष्य जब दोनो का एक बन जाता है तो वे जिस धरातल पर रहते हैं, उसका भी यथास्थान उनको ज्ञान होना चाहिए । जिस भू-मडल पर सयमी जीवन की आराधना सभावित है, उस भू-मडल सवन्धी वातावरण भी उसके अनुरूप रहना नितान्त आवश्यक है । यही कारण है कि भगवान महावीर ने आध्यान्मिक जीवन का मुख्य रूप से निर्देश करते हुए प्रसगोपात्त दस धर्मों का भी निर्देश किया है ।

श्रीमद् ठाणाग-सूत्र के दसवे ठाणे में दस प्रकार के धर्मों का सकेत है। उसमे ग्राम–धर्म, नगर–धर्म, राष्ट्र–धर्म आदि गिनाते हुए श्रुत-धर्म और चारित्र–धर्म को अंत मे रखा है । इसका तात्पर्य यह है कि श्रुत और चारित्र धर्म जिसका मुख्य लक्ष्य है, ऐसा आध्यात्मिक साधक सयम की आराधना की दृष्टि से जिस ग्राम मे विचरण कर रहा है, उसमे यदि ग्राम–धर्म की सुव्यवस्था नही है अर्थात् वहा अराजकता का

प्रसग है, वायुमडल दूपित है तो उस गाव के अन्दर मुनि अपने श्रुत और चारित्र धर्म की आराधना कैसे कर सकता है ? वैसे ही नगर-धर्म के लिये सकेत है । जिस नगर मे नैतिकता की दृष्टि से सुव्यवस्था नही है, जहा सब लोग स्वच्छद और उद्दण्ड है, एक-दूसरे को सताने वाले है तो ऐसे नगर के बीच वह साधक श्रुत और चारित्र धर्म की आराधना नही कर सकता है । चाहे साधक कैसा भी क्यो न हो, परन्तु अभी आध्यात्मिक शक्ति का माध्यम शरीर है । अत शरीर का जहा निर्वाह करना है, उस स्थान का वायुमडल भी तो शुद्ध होना चाहिये । यदि नगर सुव्यवस्थित है अर्थात् नैतिक धरातल के साथ है, नगर के रहने वालो मे एक-दूसरे का सहयोग है, सहानुभूति है, मानवीय धरातल पर शाति है तो उस नगर मे आध्यात्मिक जीवन का साधक अपनी पवित्र साधना करते हुए अपने चरम लक्ष्य को भलीभाति प्राप्त कर सकता है। साधक वहा जो लक्ष्य साधता है, वह सिर्फ उसके लिए ही नही होता परन्तु जन-समुदाय के लिये भी वह शुद्ध और आदर्श वायुमण्डल तैयार करने वाला बनता है ।

ग्राम-धर्म और नगर-धर्म की सुव्यवस्था के वर्णन की तरह ही राष्ट्र-धर्म के विषय मे भी समझना चाहिये । जिस राष्ट्र मे व्यवस्थित मानवीय धरातल है, आत्मीय शक्तियो के विकास का सुन्दर अवसर है, जिसमे हरएक साधक अपनी साधना को साधने मे तत्पर रह सकता है, वही श्रुत-धर्म और चारित्र-धर्म की आराधना हो सकती है । यदि राष्ट्र मे अराजकता है, विप्लव की स्थिति है, राक्षसी-वृत्तियो का दौर-दौरा है तो वहा आध्यात्मिक साधक का भी टिकाव नही हो सकता है ।

इस प्रकार दस धर्मों के वर्णन से वीतराग देव ने मुख्य तौर पर आध्यात्मिक जीवन का सकेत देते हुए नैतिक जीवन का परिमार्जन करने के लिए ग्राम-धर्म, नगर-धर्म, राष्ट्र-धर्म आदि का सकेत किया है । यह सकेत एक वैज्ञानिक तथ्य को लिए हुए है ।

मानव सिर्फ विचारो की ऊची-ऊची उडाने भरे, अध्यात्म की

सिर्फ वाते करे तो व्यावहारिक धरातल पर सामाजिक जीवन के साथ आध्यात्मिक रस कैसे आ सकता है ? इस विपय का सकेत यदि नही दिया जाता है तो वह अपने जीवन की पूर्ण साधना मे तन्मय नही हो सकता । साधु सकेत अवश्य दे सकता है, परन्तु अपनी सीमा मे आवद्ध होकर, अपने गृहीत महाव्रतो को सुरक्षित रखता हुआ, साधु-मर्यादा के अनुरूप ही वह इस राष्ट्रीय-धर्म का सकेत कर सकता है। इस प्रकार वह राष्ट्र मे रहने वाले जन-समुदाय का भव्य कल्याण अपनी वाणी के माध्यम से साध सकता है ।

वीतराग वाणी के इस विषय के अतर्भूत ही राष्ट्र-धर्म का प्रसग आ जाता है । इस दृष्टिकोण से आध्यात्मिक साधक जिस स्थान पर रहता है, जिस देश मे रहता है, उस देश के वायुमण्डल मे यदि दूषण है तो उसका प्रभाव आध्यात्मिक जीवन पर भी आ सकता है । और आध्यात्मिक जीवन का साधक यदि वायुमण्डल को शुद्ध करने मे तत्पर है तो उसके आध्यात्मिक जीवन का प्रभाव व्यक्ति के साथ ही परिवार, समाज और राष्ट्र के वायुमण्डल को भी शुद्ध करने वाला बनता है ।

आज १५ अगस्त है । भारत का स्वतन्त्रता-दिवस है । इसका प्रसग भारतवासियो के लिए उल्लास का विषय है । परन्तु जिस वक्त भारतीयो को स्वतत्रता मिली, उस समय मे और आज के समय मे अतर आ चुका है। उस समय के उल्लास तथा उस समय की भावनाओ मे और आज के उल्लास तथा आज की भावनाओ मे वडा भारी अतर दृष्टि-गत हो रहा है । यह स्वाभाविक भी है । इन्सान जिस वस्तु को ले करके चलता है, उसका यदि उसे आद्योपात ज्ञान नही है, पूर्वापर विज्ञान नही है कि उस वस्तु का मूल स्वरूप कहा है, जिसका सरक्षण करने पर ही शाखा-प्रशाखाये वनती है और बिना विज्ञान ही यदि वह सहसा उसके उल्लास मे प्रफुल्लित होता है तो उल्लास स्थायी नही रह सकता है। आगे चल कर यह उल्लास ठडा पड जाता है, परिवर्तित हो जाता है ।

एक दृष्टि से चितन किया जाए तो भारतीयो की लगभग यही

स्थिति है। उन्होने यत्किंचित् उपलब्धि १५ अगस्त १९४७ को की थी। उस प्रसग पर वे फूले नही समाये थे। परन्तु स्वतन्त्रता का स्वरूप क्या है, स्वतन्त्रता-दिवस किस तरह से मनाया जाता है, इसका पूर्वापर सम्बन्ध क्या है और स्वतत्रता की जडे किस स्थान पर जमी हुई है, इन जडो को सभाला या नही, अथवा सिर्फ परिपक्व फल को देख कर ही उल्लसित हो गये आदि-आदि विषयो का यदि दीर्घदृष्टि सहित ज्ञान होता तो भावना में जो कुछ परिवर्तन दृष्टिगत हो रहा है, वह नही होता।

बधुओ! उन्होने अपनी दृष्टि से जो कुछ भी सोचा हो, परन्तु वस्तुस्वरूप की दृष्टि से स्वतन्त्रता क्या है—इस विषय को पहिले तात्त्विक दृष्टि से समझ लेना चाहिये। जहा राष्ट्रीय स्वतत्रता का राष्ट्र-धर्म की दृष्टि से चिंतन होता है तो वही पर वस्तुत राष्ट्रीय स्वतत्रता है। स्व का अर्थ है—आप (स्वय)। तत्र का अर्थ नियत्रण और सिद्धात भी लिया जाता है। अत जिसमे अपने आप पर नियत्रण हो, वह स्वतत्रता है। जहा राष्ट्र-धर्म का प्रसग है, उस राष्ट्र-धर्म मे राष्ट्र की स्वतत्रता आती है। उसका अर्थ यह होता है कि राष्ट्र के अदर रहने वाले प्रबुद्ध व्यक्तियो के हाथ मे राष्ट्र का नियत्रण हो, तभी वहा राष्ट्र-धर्म रहता है और सुव्यवस्था का रूप बन सकता है।

प्रबुद्ध व्यक्ति का मतलब है वह व्यक्ति, जिसने राष्ट्र-धर्म से युक्त राष्ट्रीय-सस्कृति पाई हो। कौन-से राष्ट्र की कौन-सी सस्कृति उसके गौरव को बढाने वाली है, किस राष्ट्र मे कौन-सी सस्कृति काम करती है, पडौसी राष्ट्र कौन-सी सस्कृति के है, उनके जीवन का धरातल क्या है, राष्ट्र का धरातल क्या है, इस प्रकार का तुलनात्मक विज्ञान प्रबुद्ध व्यक्ति को होना जरूरी है। उस राष्ट्रीय धरातल पर जिन मानवो का निवास है, उन मानवो के अन्दर जो चेतना है, उस अतश्चेतना के स्वरूप, आध्यात्मिक जीवन के स्वरूप को जान कर व्यक्ति प्रबुद्ध हो सकता है।

तात्पर्य यह है कि जिस शरीर-पिण्ड को लेकर हम चल रहे है, उसके दो भाग है—एक भौतिकता-प्रधान और दूसरा आध्यात्मिकता-

प्रधान । भौतिकता-प्रधान और आध्यात्मिकता-प्रधान जीवन का ज्ञान भी उस प्रबुद्ध मानव को रहना चाहिये । वैसे ही राष्ट्रीय-सस्कृति के दोनो अग एक आतरिक सस्कृति और एक बाह्य सस्कृति का विज्ञान भी इन प्रबुद्धो को होना चाहिये। नैतिकता और अनैतिकता तथा मानवीय बुद्धि और दानवी अवस्था किन-किन लक्षणो से पल्लवित होती है, इस विषय का ज्ञान भी आवश्यक है। इसी तरह पडौसी देशो मे यह विज्ञान है या नही, इस प्रकार की तुलनात्मक विज्ञान अवस्थाओ का ज्ञान भी इन प्रबुद्धो को होना चाहिए। जो व्यक्ति इन सब विज्ञानो के साथ हो, वही प्रबुद्ध की सज्ञा पा सकता है। जो इन सब विज्ञानो के साथ अपने जीवन के धरातल को माज सके और जैसे विचार उसके मस्तिष्क मे है, उनका यथासाध्य प्रतिपादन करता हुआ उनको यथाशक्ति अपने जीवन मे, आचरण मे लाते हुए चले, उसको ही प्रबुद्ध की सज्ञा दी जा सकती है । जो राष्ट्रीय धरातल पर रहने वाले प्रबुद्ध है, उनको अपने राष्ट्र की नियन्त्रण-शक्ति प्राप्त हो और उस नियन्त्रण के साथ यदि राष्ट्र है तो वह राष्ट्र स्वतत्रता की स्थिति मे कहला सकता है। इसी को राष्ट्रीय स्तर पर स्वतत्रता की सज्ञा दी जा सकती है ।

इस प्रकार के विज्ञान वाले प्रबुद्ध यदि अपने हाथ मे राष्ट्रीय स्थिति को लेकर चलते है तो वे राष्ट्रीय स्तर पर जो कुछ भी व्यवस्था करनी है, उस व्यवस्था मे जागरूक रहते हुए स्वतत्रता का लाभ प्राप्त करने मे समर्थ होते है ।

ध्यान रखना चाहिये कि इस प्रकार का प्रबुद्ध-वर्ग समाज के बीच में से ही आता है। समाजो का समूह ही राष्ट्र है। इसलिये सामाजिक स्वतत्रता का होना भी आवश्यक है । सामाजिक स्वतत्रता की दृष्टि से समाज के प्रबुद्ध व्यक्तियो के हाथ मे समाज का तत्र हो । सामाजिक स्वतत्रता जिनके हाथ मे है, ऐसे व्यक्ति ही आगे स्वतत्रता को साध सकते है । परन्तु समाज का रूप परिवार मे रहा हुआ है । इसलिये पारिवारिक स्वतत्रता भी अपेक्षित है। जिस प्रबुद्ध का जीवन जिस परिवार मे

हो, वह उस परिवार की भव्य स्वतत्रता को रख सके, परिवार का नियत्रण आत्मीय भावना से कर सके, वही परिवार समाज को सामाजिक शक्ति से पुष्ट बना सकता है ।

परन्तु परिवार की जडे भी तो व्यक्ति मे रही हुई है । परिवार मे व्यक्ति का अपना स्वतत्र अस्तित्व है । व्यक्ति-स्वतत्रता का मतलब 'स्व' का नियत्रण है । जो व्यक्ति अपने ऊपर नियत्रण रख कर चलता है, अपना जीवन अपने नियत्रण मे रखता है, अपनी तमाम प्रक्रियाओ को व्यवस्थित रखता है, वही व्यक्ति अपनी व्यक्ति-स्वतत्रता की स्थिति को लेकर चलता है । व्यक्ति मे यह स्थिति तभी पनप सकती है, जबकि वह आध्यात्मिक लक्ष्य से परिपूर्ण हो और उसका जीवन आध्यात्मिक सिद्धात के अनुरूप हो ।

आध्यात्मिक-मार्ग तलवार की धार से भी तीक्ष्ण है । मानसिक वृत्तियो मे जो विकारो का प्रवेश है, जिनके कारण व्यक्ति विषमता और विकारो का शिकार बनता है, उन वृत्तियो के ऊपर जिस व्यक्ति का नियत्रण है, वही व्यक्ति अपना स्वतत्र नियत्रण लेकर चलता है । ऐसे व्यक्ति की आध्यात्मिकता से परिवार मे नियत्रण आता है और पारिवारिक स्वतत्रता आती है । परिवार मे स्वतत्रता को पोसने वाला व्यक्ति सामाजिक स्वतंत्रता को पनपा सकता है और वही राष्ट्रीय स्वतत्रता का सिरमौर बन सकता है ।

स्व (अपना) तत्र (शासन) यह स्वतत्रता शब्द की व्याख्या हुई । स्वतत्रता के अतरपेटे मे (अन्तर्भूत) आर्थिक स्वतत्रता समाई हुई है । और जीवन की स्वतत्रता भी रही हुई है । परन्तु मुख्य तौर पर यदि तत्र की व्यवस्था ठीक है, नियत्रण व्यवस्था भलीभाति है तो वहा स्वतत्रता का उपयोग सही तरीके से हो सकता है ।

आज जिस स्वतत्रता की व्याख्या अपने चितन का विषय बन रही है, उसको आप अपने बौद्धिक धरातल पर ठीक तरह से व्यवस्थित करे । सभव है कि आप स्वतत्रता की लम्बी व्याख्या मे नही गए हो ।

आप स्वतन्त्रता का सिर्फ इतना ही अर्थ समझते हो कि अग्रेजो के हाथ मे भारत का नियत्रण था और अग्रेज 'पर' थे इसलिए भारत परतत्र था। और अब भारतीयो के हाथ मे भारत का नियत्रण आ गया है, इसलिये भारत स्वतत्र हो गया है। इस अर्थ तक यदि भारतीय सीमित है और इसी को महत्त्व देकर के आज की दशा को देखना चाहते है तो यह बहुत ही चिंतनीय स्थिति है। स्वतत्रता का अर्थ इतना ही नही है। यह अर्थ तो बिल्कुल ही सीमित है और ऐसा कहा जा सकता है कि केवल एक पत्ता ले लिया है और सारा का सारा वृक्ष तो छिपा हुआ ही है। जब तक जड-मूल सहित इस वृक्ष का ज्ञान नही होगा तब तक पत्ते की स्वतत्रता के ज्ञान को ही स्वतत्रता समझ कर चलते रहेगे। न तो यह मानव के साथ इन्साफ है और न ही राष्ट्र के साथ न्याय है।

इस स्वतत्रता-दिवस के प्रसग को लेकर कई व्यक्ति भारतीयो की उपलब्धि पर आलोचना और प्रत्यालोचना मे उतरते है। जिन व्यक्तियो के हाथ मे तत्र है, वे उनकी सिर्फ बुराइयो को ही प्रकट करते है। वे उनकी अच्छाइयो को छिपाने की कोशिश करते है। साथ ही उसका प्रतिपादन इस ढग से करते है कि हम राष्ट्र की वास्तविक स्वतत्रता को बतलाना चाह रहे है। परन्तु जिसके मन मे राष्ट्र की स्वतत्रता का सच्चा प्रेम है, वह तो तटस्थ दृष्टि से ही आलोचक बनेगा। आलोचना कोई बुराई नही है, परन्तु वह स्वस्थ होनी चाहिये। जहा स्वस्थ आलोचना होती है, वहा गुण और अवगुण दोनो का तुलनात्मक दृष्टि से विश्लेषण होता है। राष्ट्र के व्यक्तियो ने राष्ट्रीय धरातल पर यत्किंचित् दृष्टिकोण और जो बाते रखी, उनमे जो कमी रह गई है, उसका निर्देश किया जाए, परन्तु यह सब तटस्थ भावना से किया जाय ताकि वह हर व्यक्ति के ऊपर असर करने वाला हो। एकागी आलोचना अथवा एकात वस्तु को लेकर चलने वाला इन्सान न तो अपने तत्र को और न अपने राष्ट्रीय तत्र को ही सुरक्षित रख पाता है। उसमे राष्ट्रीय तत्र के विपरीत तत्त्व आ सकते है।

जो कुछ भी उपलब्धिया भारत को हुई है, वे सब आप लोगो से सबधित है और आप ही अपनी सीमा मे उनका चिंतन करे। मैं तो सिर्फ वस्तु-स्वरूप का निर्देश कर रहा हू। इन उपलब्धियो के साथ यदि तटस्थ दृष्टि से चिंतन चलता है तो यह वस्तुस्थिति अवश्य सामने आती है कि स्वतत्रता का जो मधुर फल जनता को मिलना चाहिये, वह अभी तक उपलब्ध नही हो पाया है। दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि वह परिपक्व रूप मे भी प्राप्त नही हुआ है। यदि वह परिपक्व रूप मे प्राप्त होता तो भारतीय जीवन की वर्तमान दशा ऐसी नही रहती। आज जो कुछ खीचातानी चल रही है, गुटबदी चल रही है, स्वार्थ का अखड चल रहा है, ये सब स्वतत्रता के अनुरूप नही है परन्तु परतत्रता की जजीरे है। यह स्थिति चाहे व्यक्ति मे हो, चाहे परिवार मे हो, समाज मे हो अथवा राष्ट्र मे हो, उज्ज्वल भविष्य की द्योतक नही है। यह तो अधकार की सूचना दे रही है। भारतीयो को इस अधकार से सावधान रहना है और स्वतत्रता के वास्तविक तथ्य को समझना है। जिस दिन भारतीय इस वास्तविक तथ्य को समझेगे, उसी दिन उनके साथ शुभ स्वतत्रता का सबध जुडेगा।

बधुओ ! मैं कभी-कभी चिंतन की दृष्टि से एक आम्र-वृक्ष की उपमा दे दिया करता हू। आम्र-वृक्ष का बीज जमीन मे बोया जाता है। जब वह अकुरित होता है तो उस समय उसकी सुरक्षा की आवश्यकता रहती है। परन्तु वही अकुर जब पेड का रूप धारण कर बडी बडी शाखा-प्रशाखाओ मे सम्पन्न हो जाता है तो उस वक्त उसकी सुरक्षा की उतनी आवश्यकता नही रहती। ऐसी लोकोक्ति प्रचलित है कि बारह वर्षों मे तो आम्र-वृक्ष के मधुर फल आ ही जाते है। परन्तु वे तभी आते है, जबकि उस आम के वृक्ष की जडो की सिचाई होती है, उनकी सुरक्षा होती है, उनमे खाद दी जाती है। जडे यद्यपि छिपी रहती है, परन्तु वस्तुत आम्र-वृक्ष के मधुर फल उन जडो मे से ही निकलते है। जिस प्रकार मधुर आम्र-फल के लिए आम्र-वृक्ष की जडे सहायक है, वैसे

ही राष्ट्रीय सुफल के लिए, राष्ट्रीय मानवों को स्वतन्त्रता का मधुर फल चखाने के लिए छिपी रहने वाली आध्यात्मिक जडे आवश्यक है ।

राष्ट्र के सुफल की जडे व्यक्ति मे रही हुई है और व्यक्ति के भौतिक पिण्ड मे नही परंतु इसकी सद्वृत्तियो मे रही हुई हैं । इनसे ही स्वतन्त्रता के सच्चे स्वरूप को प्राप्त किया जा सकता है ।

यदि आपको राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के वास्तविक सुमधुर फल चाहिए तो विदेशियो से यत्किंचित् छूट कर और नियन्त्रण शक्ति को पाकर आप फूले नही । आप यह सोचे कि हमको जो चीज प्राप्त हुई है, इसको हम आगे से आगे बढाते हुए व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र एव विश्व इन पाचो अगो को पुष्ट करते हुए चलेगे, तब तो हम उसके मधुर फल चखेगे और यदि इस प्रकार नही चले तो हमारे हाथ मे कच्चे फल भी आ सकते है । और आज वही देख रहे है ।

एक दृष्टि से देखा जाए और तटस्थ दृष्टि से चिंतन किया जाए तो आज राष्ट्र की विचित्र दशा देखने को मिलती है । इसके पीछे अनुसधान की कमी है । राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के पीछे प्रबुद्ध व्यक्तियो की कमी है । प्रबुद्ध व्यक्तियो का जब तक निर्माण नही होता, तब तक सर्वांगीण दृष्टि से सोच नही पाते और इस प्रकार सोचने के अभाव मे वास्तविक जीवन के अभाव की स्थिति बनी रहती है । उसके अभाव मे सब प्रकार से अभाव का प्रदर्शन होता है ।

आज राष्ट्रीय धरातल पर विषमता का जो नग्न नृत्य हो रहा है, सामाजिक व्यवहार की जो दुर्दशा हो रही है, परिवार के लोगो मे जो विडम्बना की स्थिति बन रही है, इन सब कारणो से इस निष्कर्ष पर पहुचा जा सकता है कि जिस १५ अगस्त को स्वतन्त्रता मिली, उसे बीते हुए आज छब्बीसवा वर्ष चल रहा है, तो क्या छब्बीस वर्षो मे भी आम्र-वृक्ष फल न दे, मधुर फल न दे ? प्राचीन तथाकथित सकेत मे तो बारह वर्ष ही चाहिए । बारह वर्षो मे फल देने वाले आम्र-वृक्ष को यदि कलम किया जाय तो वह और भी कम वर्षों मे मधुर फल दे

सकता है। भारतीयो को विदेशियो के हाथ से इस वैज्ञानिक युग मे स्वतन्त्रता मिली है। यदि वे सही दृष्टिकोण से, वैज्ञानिक दृष्टि से चलते तो छब्बीस वर्ष जिस स्वतत्रता को हो जाये, फिर भी राष्ट्र की दशा लगभग वही देखने को मिले, जो पूर्व मे थी तो क्या यह चितनीय स्थिति नही है ?

१५ अगस्त का दिन आया और कुछ झण्डे फहरा दिए गए। राष्ट्रीय ध्वज के साथ अपने कुछ रीति-रिवाज अदा कर दिए गए। दो-चार नारे लगा दिए और भाषण हो गए। इससे ही सन्तुष्टि कर ली जाती है कि हमने स्वतत्रता-दिवस मना लिया। परन्तु इस तरीके से स्वतत्रता-दिवस नही बनता है और न ही मनाया जा सकता है। इसमे तो आत्मावलोकन करना आवश्यक है। आज हर व्यक्ति को अपने मानस मे भारतीय जीवन की जर्जरित दशा का चितन करना चाहिये। आज-कल नारे खूब लगाये जाते है। जितने दल है, उन सबके बडे लुभावने नारे है। वे सब अपनी-अपनी दृष्टि से अपना चितन करते है। परन्तु वे अदर का अवलोकन नही करते कि वस्तुत हम राष्ट्रीय चरित्र के साथ चल रहे है या राष्ट्रीय चरित्र का हनन करते हुए चल रहे है। हम जैसे नारे लगा रहे है, उनके अनुरूप ही हमारा जीवन है भी या नही ? यदि उनके मन मे वस्तुत भारत के कल्याण की भावना है, वास्तविक राष्ट्रीय स्वतत्रता की भावना है तो वे भारत के साथ खिलवाड कभी नही करेगे।

आज अनैतिकता का जो ताडव-नृत्य दृष्टिगत हो रहा है, वह किसी वर्ग-विशेष मे ही नही है। कहा जाता है कि अमुक वर्ग मे अनैतिकता व्याप्त हो गई है, परन्तु आप तटस्थ दृष्टि से चितन करेगे तो किसी एक वर्ग मे ही नही, दूसरे-दूसरे वर्गों मे भी यह होड चल रही है। चाहे किसी नाम से कोई सस्था हो या पार्टी हो, कही कम और कही ज्यादा, परन्तु प्राय कोई वर्ग इस तत्त्व (अनैतिकता) से अछूता नही है। अत आज किसको राष्ट्रीय चरित्र से हीन कहा जाए और किसको राष्ट्रीय चरित्र-सपन्न कहा जाए, समाज के सामने यह एक टेढा प्रश्न

है। समाज उसका चिंतन भलीभांति नही कर पा रहा है।

आज इस प्रकार की धावलेबाजी चल रही है कि जिसकी लाठी उसकी भैस। बडा मच्छ-गलागल न्याय चल रहा है। एक मछली ने किसी छोटी मछली को पकडा तो दूसरी बडी मछली उसे खाने को तैयार है। जिधर जो मिले उसे लूटते जाए। किसी को राष्ट्र की परवाह नही। नैतिक-अनैतिक कुछ नही, स्वार्थपूर्ति होनी चाहिये। चरित्र क्या है ? यह भी कुछ नही। ऊपर से तो नैतिकता की बाते की जाये, राष्ट्रीय चरित्र की बाते की जाये, परन्तु जीवन मे शून्यता है। चाहे कोई व्यक्ति हो या वर्ग हो, अधिकाशत यही स्थिति है।

छात्र-वर्ग, जो कि शिक्षा लेने वाला है—जिसमे राष्ट्रीय-चरित्र का जीवन आना चाहिये, उसको भी देखा जाये तो वहा भी राष्ट्रीय-चरित्र के शायद ही कुछ नमूने मिले। छात्रो को भी अनुचित तरीके से भडकाया जा रहा है। वे अपनी ही वस्तु की तोड-फोड करने मे तत्पर होते है। जो ऐसा कर रहे है, क्या वे राष्ट्रीय-चरित्र मे निष्ठा रखते है ? छात्रो को सोचना चाहिये कि यह सम्पूर्ण सम्पत्ति राष्ट्र की है—हमारी है और हम राष्ट्र के है। यदि इस प्रकार की निष्ठा छात्र-वर्ग मे आ जाए तो फिर उसको कितना भी प्रलोभन देकर भडकाया जाए, परन्तु वह ऐसा नही करेगा। जिस बच्चे को अपने परिवार का ज्ञान है और जिसे अपनी चीजो पर ममत्व है, उसको यदि कहा जाए कि तुम अपने माता-पिता से अमुक चीज की माग करो और वे न दे पायें तो उन्हे तोड-फोड कर फेंक दो। क्या वह ऐसा काम करेगा ? परिवार का वास्तविक सदस्य तो किसी के बहकावे मे आकर ऐसा कार्य नही करेगा। इसी प्रकार से छात्र-वर्ग, जो कोमल पौधे के तुल्य है, उसको यदि राष्ट्रीय-जीवन का महत्त्व समझाया जाए, व्यक्ति के चरित्र के साथ-साथ समाज और राष्ट्र के चरित्र का शिक्षण दिया जाए तो वह अपनी माग के लिये इस प्रकार की तोड-फोड और हिंसक नीति मे कभी नही जायेगा। जो हिसा की नीति को अपनाते है, तोड-फोड करते हैं, क्या वे राष्ट्रीय-चरित्र के

प्रति वफादार है ? क्या वे राष्ट्र को अपना समझते है ? मैं समझता हू कि उनमे राष्ट्रीय-चरित्र की बहुत बडी कमी है । क्या वे वास्तविक स्वतत्रता-दिवस मना सकेंगे ? आज जो कुछ भी सुनने को मिल रहा है- वह चाहे किसी वर्ग-विशेष मे मिलता हो परन्तु सुन-सुन कर विचार अवश्य होता है कि यह कैसी राष्ट्रीय स्वतत्रता आ गई ?

माग हो सकती है परन्तु उसके तरीके भी तो है। यदि नजदीक से देखे तो यह तरीका महात्मा गाधी ने भारतीय स्वतत्रता-आदोलन से बता दिया। उन्होने अग्रेजो को हटाने के लिये तोड-फोड का निर्देश कभी नही किया । गाधीजी की जीवनी को देखते है तो प्रकट होता है कि उनका जीवन पर नियत्रण था । उन्होने स्वतत्रता का आदोलन चालू किया तो प्रारम्भ मे उनके साथ केवल उन्नीस ही व्यक्ति थे। परन्तु उनकी आवाज मे बल था, राष्ट्रीय भावना थी और राष्ट्रीय-चरित्र था। आखिर वे कामयाब हो गए। यह बात अलग है कि अन्य सूत्रो से स्वतत्रता प्राप्ति के प्रसग मे हिंसा का ताडव-नृत्य हुआ। परन्तु उनका यह सकेत कभी नही था कि हिसा का ताडव-नृत्य हो। उन्होने किस तरह से कार्य किया, यह इतिहास के पृष्ठो को देखेगे तो हजारो वर्षो मे भी ऐसा रूपक नही मिलेगा कि अहिसा से स्वतत्रता प्राप्त की गई ।

हिंसा मे विश्वास रखने वाले देश भी अब यह सोचने लगे है कि वस्तुत विश्व मे शाति होगी तो वह हिसा से नही परन्तु नि शस्त्रीकरण से ही होगी । शस्त्रो के बल से शाति कभी नही होगी । कम-से-कम आज वे मुह से तो ऐसा कहने लगे है । उनके मन मे भले ही दूसरी बात हो, परन्तु उनकी वाणी मे और मस्तिष्क मे यह तत्त्व आ जरूर गया है। उनको देखकर भारतीयो को यह तथ्य अपनाना चाहिये कि जो हिसा मे विश्वास रखने वाले है, वे व्यक्ति भी अहिसा की बात कहने लगे है । हमको इसके लिये गौरवान्वित होना चाहिये । परन्तु इस तथ्य को भुला कर भारतीय विपरीत दिशा मे चल रहे है । आज यहा हिसा मे विश्वास किया जा रहा है । आज भारत मे रहने वाले भी हिसा के

कार्यों को प्रश्रय दे रहे हैं ।

हमे सोचना चाहिये कि जिनके हाथो मे आज देश का तंत्र सौंपा जा रहा है, उनकी मानस-वृत्ति क्या है ? क्या वे कम-से-कम अपने व्यक्तिगत जीवन मे तो स्वतंत्र है ? क्या परिवार और समाज की स्वतन्त्रता है ? मस्तिष्क की दृष्टि से देखा जाय तो वे विचारो की स्वतन्त्रता का ढिंढोरा मात्र पीटते है परन्तु मानसिक दृष्टि से अधिकांश परतंत्र ही बने हुए हैं। परतन्त्र किस बात के ? अंग्रेज चले गए परन्तु भारतीयो के मन मे आज भी अंग्रेजो की गुलामी छाई हुई है। वे परतंत्र बने हुए है परन्तु स्वयं की दृष्टि से ऐसा जरूर कहते है कि हम स्वतंत्र है । क्या इस प्रकार से वे अपने को स्वतंत्र कहने के हकदार है ? वे अपने जीवन को तो देखे कि हमारी कैसी दयनीय दशा है ? वही पाश्चात्य गुलामी चल रही है तो फिर स्वतन्त्रता कहा है ? आप स्वयं का तंत्र तो कह रहे हैं परन्तु वह नभी आ सकता है जबकि आप आध्यात्मिक दृष्टिकोण से चिंतन करके चले। ध्यान रहे कि हमारा जीवन राष्ट्र मे, समाज मे, परिवार मे भले ही रहे परन्तु यदि वह आध्यात्मिकता से शून्य है तो कोई मधुर फल आने वाला नही है। यदि वह आएगा भी तो केवल इतना ही आ सकता है कि भद्रिक (भोलीभाली) जनता से वोट ले लिया जाये और फिर सिंहासन प्राप्त करके जो कुछ भी धाधलेबाजी चल सकती है, उसे चलाया जाये । यदि वे ऐसी भावना रख रहे है और फिर भी कहते है कि हम वस्तुत राष्ट्र के नागरिक है तो तटस्थ व्यक्ति यही कहेगे कि यह सब धोखा अथवा छलावा मात्र है ।

जिसमे स्वतन्त्रता के भाव हैं, वह व्यक्ति स्वच्छंदता मे नही जाएगा। ये दोनो भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं। आज स्वतन्त्रता के नाम से जीवन मे स्वच्छंदता चल रही है। इच्छा के अनुसार रीति-नीति चल रही है। किसी का किसी पर अंकुश नही, प्रभाव नही । लोग अपनी इच्छा के अनुसार धांधलेबाजी चला रहे है। यह मानसिक परतन्त्रता है, असंयमी जीवन की परतन्त्रता है । ऐसी स्थिति मे मानव अपने जीवन का विकास

नही कर सकता । यद्यपि मैं तो अपनी भाषा मे ही कह सकता हूं परन्तु आप अपनी स्थिति से चिंतन करे और इस दृष्टि से सोचे कि आपका जीवन क्या है ? भारतीयो का जीवन क्या है, उनका क्या उत्तरदायित्व है और किस उत्तरदायित्व को लेकर वे चल रहे है ? मेरे भद्रिक भाई यही सोचते होगे कि यह काम तो उनका है, जिनके हाथ मे शासनतन्त्र है । परन्तु ऐसा सोचना ठीक नही है । यह कार्य तो प्रत्येक नागरिक का है । व्यक्ति मे यदि इस प्रकार की भावना आ जाए तो वह अपने स्वार्थ को, अपने जीवन को भी अर्पण कर सकता है, परन्तु राष्ट्रीय उन्नति पर धब्बा नही आने देता है ।

मैंने किसी पुस्तक मे पढा है कि जापान का एक गरीब व्यक्ति जहाज मे नौकरी करता था । एक भारतीय उसी जहाज मे सफर कर रहा था । भारतीय को फलो की आवश्यकता अनुभव हुई । उसने जहाज मे तलाश की, परन्तु उसको वहा फल उपलब्ध नही हुए तो वह जोर-जोर से चिल्ला कर कहने लगा कि यह कैसा निकम्मा देश है कि जिसके जहाज मे फल तक उपलब्ध नही है । इन कठोर वचनो को सुन कर वह मजदूर उन महाशयजी के पास पहुँचा और नम्रता से कहने लगा, "आप क्या फरमा रहे है ? जरा ठहरिए ।" और फिर वह अपने स्थान पर गया, जहा उसने अपने लिये कुछ फल रख छोडे थे । उनको लेकर वह आया और उन महाशयजी को भेट कर दिया । वह भारतीय फल प्राप्त करके खुश हो गया और पैसे निकाल कर देने लगा तो उस भाई ने कहा, "मेहरबान, माफ कीजिए, मुझे पैसे नही चाहिये । परन्तु आपसे मेरा सानुरोध निवेदन है कि आप कृपया मेरे देश के लिये ऐसे शब्दो का प्रयोग कभी न करे ।"

उस गरीब व्यक्ति के मन मे अपने देश के प्रति जो राष्ट्रीय भावना थी, क्या वही भावना आज भारतीय जनता मे भी है ? आज भारत के व्यक्ति ही भारत के लिए क्या कुछ बोल जाते है सो आप जानते ही है । वे कार्य करना नही जानते, वे केवल बोलना जानते है और उनका बोलना भी स्वच्छद तरीके से होता है । वे कहते है कि हमे वाणी की

स्वतन्त्रता है । इसलिये वे इच्छा के अनुसार बिना लगाम, बिना अकुश जो कुछ भी बोलना चाहे बोल जाते है । यह स्वतन्त्रता है या स्वच्छदता ?

एक दूसरा उदाहरण और लीजिये—जब रूस और जापान का युद्ध छिडा तो एक जगह केवल पचास जापानी अढाई सौ रूसियो के साथ भिड गए और जी-जान से सघर्ष करते रहे । उस प्रसग पर अडतालीस जापानी मारे गए और दो शेष रहे । वे दोनो भी घेरे मे पड गए । उनमे मे एक घायल हो गया । जब बचने का कोई अवसर नही रहा तो घायल जापानी ने ऐसी अवस्था मे अपना झडा साथी को सौपते हुए कहा, "इसे ले जाकर मेरी पत्नी को दे देना और कह देना कि तुम्हारा पति लौट कर नही आ सकता है । परन्तु तुम अपने जीवन को राष्ट्रीय-जीवन के साथ सम्बद्ध रखना ।" उसने यह सदेश अपने साथी को दिया । फिर उसका प्राणान्त हो गया । रूसी सिपाही उसके साथी को पकड कर सेनापति के पास ले गए । अपने देश का झडा उसके हाथ मे था । सेनापति ने कहा कि यह झडा अब रूस को समर्पण कर दो । उसने कहा कि मैं ऐसा कभी नही कर सकता । सेनापति ने कहा, "तुम जान से चले जाओगे । यदि झडा अर्पण करोगे तो बच जाओगे ।" उस जापानी ने उत्तर दिया, "मुझे मरना कबूल है परन्तु झडा देना कबूल नही है ।" अततोगत्वा उसको तोप के मुह पर खड़ा कर दिया गया । अन्तिम निर्देश भी कर दिया गया । इधर तोप चली और उसके शरीर को भेदन करके उसके हाथ से झडा उडा । वह सेनापति के मस्तक पर गिरा । उसने झडा समर्पण नही किया । देखिए, जापानियो को चाहे आध्यात्मिक जीवन की शिक्षा न मिली हो, परन्तु जिस भूमिका मे वे है तो उस भूमिका मे जीवन कैसा है ?

आज तो हमारे यहा व्यक्तिगत स्वतत्रता भी गायब है । लोग स्वय को असुरक्षित अनुभव करते है, आसुरी अवस्था चल रही है । समाज मे भी स्वच्छदता की स्थिति है और उसी मे से आते हैं राष्ट्र के चुने हुए सदस्य । क्या वे स्वतन्त्रता को दीर्घकाल तक सुरक्षित रख सकेंगे ? यह तो भावी

के गर्भ की बात है परन्तु अब भी समय है यदि भारतीय संभल गए और वास्तविक कर्तव्य को सभाल लिया तथा आध्यात्मिकता के साथ स्वतत्रता सीख गए और अपने जीवन तथा मन पर नियत्रण रखा तो उनकी स्वतत्रता सुरक्षित है।

समता के धरातल पर चलने की नितान्त आवश्यकता है और यदि समता-सिद्धात दर्शन के आधार पर चलने की स्थिति बनी तो मैं कह सकता हू कि भारत ही नही, सारे विश्व के सामने अमोघ शाति का प्रशस्त-मार्ग आ सकता है। समता-सिद्धात-दर्शन व्यक्ति की मानसिक दशा को माजता है । ऐसा व्यक्ति जहा रहेगा, वहा अपने उत्तरदायित्व को लेकर चलेगा। वह अपना उत्तरदायित्व तो पूरा निभाता ही है परन्तु यदि उसका साथी कमजोर है, तो वह उसको भी सहायता देकर पार लगाएगा। जिसमे इस प्रकार के नियत्रण की स्थिति आती है, वही व्यक्ति स्वातत्र्य के झडे को हाथ मे स्थिर रख सकता है। इस प्रकार यदि आध्यात्मिक जीवन ठीक हो गया तो परिवार, समाज और सारे ससार के सामने समता जीवन दर्शन का आदर्श उपस्थित होगा। इसी भावना के साथ भगवान की प्रार्थना की कडियो का सबोधन कर रहा हू—

ढाल तलवारनी सोहली, दोहली चोदमा जिन तणी चरणसेवा।

बधुओ ! तलवार की धार से भी भगवान की चरण-सेवा कठिन मानी गई है । अत जो सब धरातलो पर साधना करके अपने जीवन को लेकर चलेगा और आवश्यक स्थिति मे सयमित अवस्था को रख कर बढने की कोशिश करेगा वह शाति का अनुभव कर सकेगा । राष्ट्रीय-दिवस के उपलक्ष्य मे जो कुछ कहा गया है, उसका आप चिंतन-मनन करे । उसके साथ आप अपने मस्तिष्क की गुत्थियो को समता-सिद्धात दर्शन के द्वारा सुलझाने की कोशिश करें ।

आप समता-सिद्धात-दर्शन के साथ चलते हुए यदि सही दृष्टि-कोण से अपने जीवन का परिमार्जन करने की कोशिश करेगे तो आप स्वतत्रता-दिवस के उपलक्ष्य मे व्यक्ति, परिवार और समाज सबके कर्तव्य

को समझ पायेंगे । इस प्रकार अपने उत्तरदायित्व को वहन करते हुए एक दिन आप ऐसी भी अवस्था देख पायेंगे कि सब क्षेत्रो मे मधुर फल का आस्वादन करते हुए और अपने मार्ग पर आगे बढते हुए आप परमात्मा वन सके ।

●●●

वीकानेर—

स० २०२०, भाद्रपद कृष्णा १

कि जिससे वर्तमान मे वे समृद्धिशाली तो बने ही परन्तु शारीरिक दृष्टि से भी वे कातिमय, प्रियकारी और जनमानस के लिए आकर्षण के केन्द्र-बिन्दु बने हुए थे। ऐसी स्थिति मे भी उनके मस्तिष्क मे पूर्वजन्म के भाग्य की समृद्धि के पीछे अहंकार-वृत्ति नही थी। वे सदा नम्र होकर चलते थे। उनका चिन्तन यही रहता था कि पूर्वजन्म मे मैंने सत्कर्म किए, उनका फल मुझे वर्तमान मे मिला और वर्तमान मे मैं सत्कर्म करूगा तो इससे मैं अपना वर्तमान भी धन्य बनाये रख सकूगा।

इसी भावना को लेकर सुबाहुकुमार प्रभु महावीर के चरणो मे पहुँचे। वे जानते थे कि प्रभु महावीर यद्यपि मानव-पिण्ड (शरीर) की दृष्टि से एक क्षत्रिय-कुल के भूषण हैं, क्षात्रकुल मे जन्म लेने वाले एक मानव हैं परन्तु अब वे केवल इस कुल के भूषण ही नही रहे हैं, वे सम्पूर्ण जगत् के भूषण बन गए हैं। परन्तु वे बने कैसे? पूर्वजन्म से तो वे समृद्धि लेकर आए ही थे परन्तु वर्तमान के पुरुषार्थ से वे दिव्य शक्ति-सम्पन्न होकर केवलज्ञान, केवलदर्शन से युक्त बने हैं। आज वे समस्त ससार के पदार्थों को हथेली की रेखाओ के समान स्पष्ट रूप से देख रहे हैं। उनसे मेरा जीवन छिपा हुआ नही है। ऐसे वीर प्रभु का आगमन सहसा समीप हो और मैं उनके पावन दर्शन के लिये नही जा सकू, यह मेरे भाग्य की बहुत बडी कमजोरी होगी, दुर्भाग्य की अवस्था होगी। मुझे ऐसे दिव्य पुरुष के चरणो मे अवश्य पहुँचना है और उनको वन्दन-नमस्कार करके उनके दिव्य-सदेश को ग्रहण करना है। यदि उनके उपदेश के अनुरूप मैं वर्तमान पुरुषार्थ को बनाऊगा तो मैं भी उनके तुल्य दिव्य शक्ति पा सकूगा।

ऐसी दिव्य आत्माओ के मानस मे न जाने किस-किस प्रकार की उदात्त-भावनाओ का सचार होता है, यह तो वे ही सोच सकते हैं परन्तु उन प्रक्रियाओ मे उत्प्रेक्षा करके अनुमानत उन भावो को अकित किया जा सकता है। सुबाहुकुमार सम्पन्न होते हुए भी प्रभु के चरणो मे पहुँचे। उनकी पोशाक बहुत बढिया थी। वे जेवर आदि धारण किये हुए थे।

को देख कर अपने पुरुषार्थ का चयन करो। ये तो छाया की तरह बदलती हुई चली जायेगी।

सूर्योदय के समय जो मनुष्य सूर्य की तरफ पीठ करके पश्चिम की ओर मुंह करता है तो उसे अपनी छाया लम्बी दिखलाई देती है। वह छाया को देखता हुआ सोचता है कि मै बहुत बडा हू। मैं हाथ ऊचे करू तो और भी बडा हो सकता हू। वह अपने हाथो को ऊचा करता है। हाथ लबे दिखलाई देते है। वह झुकता है तो छाया भी झुकती है। वह टेढा होता है तो छाया भी टेढी हो जाती है। वह मुह फेरता है तो छाया भी मुह फेर लेती है। इस प्रकार छाया पुरुष के आधीन है। छाया के अनुरूप पुरुष नही है, पुरुष के अनुरूप छाया है। यदि इन्सान उस छाया को विशेष महत्त्व न देकर अपने जीवन को महत्त्व दे तो वह अपनी छाया को इच्छानुसार मोड सकता है। यदि वह जीवन को गौण करके छाया को पकडने के लिए दौडता है, जिधर छाया है उधर भागता है तो क्या छाया पकड में आ सकती है ? वह कितना भी दौडे परन्तु छाया उसके हाथ मे आने वाली नही है। वैसे ही इन्सान का पूर्वकृत भाग्य, उसकी हथेली की रेखाए और शारीरिक चिह्न ये सब छाया के तुल्य है। यदि वह अपनी शक्ति को मोडता है तो उसके भाग्य मे भी मोड आता है। इन्सान अपनी शक्ति को कुबडा करेगा तो उसमे भी कुबडापन आ जाएगा। यदि व्यक्ति यह सोच ले कि ये रेखाए कुछ नही, ये तो छाया के तुल्य है, मै इन्हे मोड सकता हू तो वह जीवन की शक्ति को सभाल लेगा। परन्तु मनुष्य के मन मे यह उदात्त भावना, यह शक्ति योग्य व्यक्तियो के सम्पर्क मे ही आ सकती है। यदि उनका सम्पर्क निरन्तर चलता रहा और उनके पद-चिह्नो पर चला जाए तो इन्सान बहुत बडी शक्ति पाकर बडे व्यक्तियो के समान आश्चर्यजनक कार्य कर सकता है।

सुख-विपाक सूत्र मे जो कुछ भी वर्णन है, वह इसी भावना को प्रकाशित करने वाला है। उसमे पहला अध्ययन, सुबाहुकुमार नाम का है। सुबाहुकुमार अपने पूर्वकृत भाग्य का ऐसा बडा समूह लेकर आये थे

कि जिससे वर्तमान मे वे समृद्धिशाली तो बने ही परन्तु शारीरिक दृष्टि से भी वे कांतिमय, प्रियकारी और जनमानस के लिए आकर्षण के केन्द्र-विन्दु बने हुए थे। ऐसी स्थिति मे भी उनके मस्तिष्क मे पूर्वजन्म के भाग्य की समृद्धि के पीछे अहकार-वृत्ति नही थी। वे सदा नम्र होकर चलते थे। उनका चिन्तन यही रहता था कि पूर्वजन्म मे मैंने सत्कर्म किए, उनका फल मुझे वर्तमान मे मिला और वर्तमान मे मैं सत्कर्म करूगा तो इससे मैं अपना वर्तमान भी धन्य वनाये रख सकूगा।

इसी भावना को लेकर सुवाहुकुमार प्रभु महावीर के चरणो मे पहुँचे। वे जानते थे कि प्रभु महावीर यद्यपि मानव-पिण्ड (शरीर) की दृष्टि से एक क्षत्रिय-कुल के भूपण हैं, क्षात्रकुल मे जन्म लेने वाले एक मानव हैं परन्तु अव वे केवल इस कुल के भूषण ही नही रहे हैं, वे सम्पूर्ण जगत् के भूपण वन गए हैं। परन्तु वे वने कैसे ? पूर्वजन्म से तो वे समृद्धि लेकर आए ही थे परन्तु वर्तमान के पुरुषार्थ से वे दिव्य शक्ति-सम्पन्न होकर केवलज्ञान, केवलदर्शन से युक्त वने हैं। आज वे समस्त ससार के पदार्थों को हथेली की रेखाओ के समान स्पष्ट रूप से देख रहे हैं। उनसे मेरा जीवन छिपा हुआ नही है। ऐसे वीर प्रभु का आगमन सहसा समीप हो और मैं उनके पावन दर्शन के लिये नही जा सकू, यह मेरे भाग्य की वहुत वडी कमजोरी होगी, दुर्भाग्य की अवस्था होगी। मुझे ऐसे दिव्य पुरुष के चरणो मे अवश्य पहुँचना है और उनको वन्दन-नमस्कार करके उनके दिव्य-सदेश को ग्रहण करना है। यदि उनके उपदेश के अनुरूप मैं वर्तमान पुरुपार्थ को वनाऊगा तो मैं भी उनके तुल्य दिव्य शक्ति पा सकूगा।

ऐसी दिव्य आत्माओ के मानस मे न जाने किस-किस प्रकार की उदात्त-भावनाओ का सचार होता है, यह तो वे ही सोच सकते हैं परन्तु उन प्रक्रियाओ से उत्प्रेक्षा करके अनुमानत उन भावो को अकित किया जा सकता है। सुवाहुकुमार सम्पन्न होते हुए भी प्रभु के चरणो मे पहुँचे। उनकी पोशाक वहुत वढिया थी। वे जेवर आदि धारण किये हुए थे।

परन्तु जैसे ही वे त्यागियो के चरणो पहुँचे तो इस बढिया पोशाक का आकर्पण उनके मन से लुप्त हो गया। वे उनके त्याग का साकार रूप देख कर सोचने लगे, "इन सर्वस्व-त्यागियो के समक्ष यह भभकेदार पोशाक कुछ भी महत्त्व नही रखती है।' जहा से प्रभु के दर्शन हुए, वही से वे नतमस्तक हो गए। वे पाच अभिगम सूचनाओ का ध्यान रख कर चले। उत्तरासन लगा लिया गया। अर्थात् एक कपडा मुह के सामने डाल लिया, जिससे कि वाणी विना आवरण के नही निकले। खुले मुह से वचन निकल गए तो जीवो की हिसा होगी। किसी प्रकार की हिसा नही करनी है। उन्होने अभिमानसूचक चीजे अलग रखी। फूल माला उतार कर अनुचर के हाथ मे दी। इस प्रकार वे प्रभु के समवसरण मे गए और वहा पहुँच कर पाचो अग नवा कर वदन किया। उन्होने यह नही सोचा कि मैं इस समय वन्दन कर रहा हू तो मेरी धोती के धूल लग जाएगी या मेरे आभूषण इधर-उधर झूल जायेगे।

यह विचार तो उन प्राणियो को होता है जो त्यागी को महत्त्व न देकर अपनी भडकीली पोशाक को महत्त्व देते है। ऐसे व्यक्ति अपने बहुमूल्य फल को खो देते है। आजकल जहा नमन करने का प्रसंग आता है तो उनके घुटने ऊपर ही रह जाते है। वे इस वदन के अनुरूप यत्किचित् पुण्य का सचय करते है और आत्मा की शुद्धि भी यत्किचित् होती है परन्तु यदि उनका ध्यान त्यागी के अनुरूप बन जाए तो कितने भी बहुमूल्य वस्त्र हो, इसका विचार नही रख कर वे पुण्य का फल प्राप्त करने के लिये जमीन पर झुक जायेगे।

आज के युग मे भी कई प्राणी ऐसे है जो बढिया पोशाक को महत्त्व न देकर श्रद्धायुक्त वदन को ही महत्त्व देते है। परन्तु ऐसे प्राणी बिरले ही होते है। वे यही सोचते है कि वदन से हमारे नीच गोत्र के कर्म क्षय होगे और उच्च-गोत्र के कर्म बधेगे। परन्तु ऐसा चिन्तन वही व्यक्ति कर सकता है, जिसने वदन का महत्त्व समझा हो। दुर्भाग्य की रेखा कैसे कटती है और सद्भाग्य का निर्माण कैसे होता है, इस आतरिक भावना

को नही समझेंगे तब तक वैसे फल की प्राप्ति नही हो सकती।

मैं आपसे कुछ सकेत कर रहा हू कि सुबाहुकुमार का वदन भी वैसा ही था। वे विनम्र भावना से सुख-शाति पूछ कर आगे बढे तो उनके मस्तिष्क मे यह विचार नही था कि ये प्रभु महावीर है, मैं इन्हे तो वन्दन कर लू परन्तु जो अन्य मुनि बैठे हुए है, उनको छोड कर चला जाऊ। वे यही सोचते थे कि इनके अनुशासन मे रहने वाले जितने सत-मुनी है, ये सब के सब मोतियो की माला हैं। मुझे इनको भी वदन करना है और सुख-शाति पूछ कर पूरा महत्त्व देना है। ऐसा विचार होना व्यक्ति को महत्त्व देना नही है, परन्तु धर्म और शासन को महत्त्व देना है और साथ ही साथ अपने सद्भाग्य को भी महत्त्व देना है। यह उपलब्धि वदन करने वाले को होगी, जिसको वदन किया जा रहा है, उसको नही होगी। सुबाहुकुमार के लिए इस प्रकार वदन और भाव-भक्ति तथा प्रभु के चरणो मे बैठ कर जीवन के निर्माण की कला सीखना, यह एक बहुत बडा महत्त्वपूर्ण कार्य था। उन्होने बारह व्रतो का स्वरूप समझा और उन्हे अगीकार किया। वे बहुत बडी आत्म-निधि प्राप्त करके और जीवन के कल्याण का साधन जुटा कर वहा से अपने घर लौट आए।

इस दृश्य को देख कर त्यागी-वर्ग मे भी आश्चर्य उत्पन्न हो गया। यहा तक कि भगवान महावीर के प्रथम गणधर गौतम सरीखे दिव्य-पुरुष के मन मे भी यह जिज्ञासा पैदा हो गई कि यह सुबाहुकुमार कैसे पुण्य का स्वामी बन कर आया है और इतना पुण्य इसने कहा सचित किया? यह उनका फल वर्तमान मे तो भोग ही रहा है परन्तु भविष्य के लिये भी कितना पुण्य बाध रहा है! मैं इस जिज्ञासा का प्रभु से समाधान कर लू। इसी भावना को लेकर उन्होने विधि-सहित प्रभु को वदन किया और प्रश्न रखा, "भगवन्! इस सुबाहुकुमार ने पूर्वजन्म मे क्या किया? 'किं वा दच्चा किं वा भुच्चा किं वा समायरित्ता?' इसने कौन-सा दान दिया, क्या खाया और कौन-सा आचरण किया कि जिसके परिणाम-स्वरूप यह सुबाहु बना? इस अवस्था मे आकर भी इसको

अभिमान नही छू रहा है! यह किस प्रकार की नम्र वृत्ति के साथ अमूल्य निधि को बढा रहा!"

यदि आप अपने जीवन के प्रत्येक चरण को देखने को कोशिश करे तो प्रत्येक चरण मे पुण्य बाध सकते है, धर्म कर सकते हैं और जीवन को मोड सकते है। परन्तु वह विज्ञान और कला मानव के मस्तिष्क मे हो, तभी यह काम बन सकता है। भाई! खाने से भी पुण्य बधता है, निर्जरा होती है और आत्मशुद्धि होती है। खाने से पाप भी वध सकता है। वह आत्मा को मलिन कर सकता है। उससे दुर्भाग्य का निर्माण भी हो सकता है। यह तो एक ऐसी तलवार है कि जिसको जिधर भी प्रयोग करना चाहे, उधर ही कर सकते हैं। तलवार को अन्य प्राणियो की शाति के लिये, सुरक्षा के लिये काम मे ले सकते हैं तो उससे दूसरो के हाथ-पैर भी काटे जा सकते है। वैसे ही इन्सान की जितनी भी क्रियाये है, उनसे दुर्भाग्य और सद्भाग्य दोनो का निर्माण हो सकता है।

सुबाहुकुमार के सम्बध मे गौतम गणधर के द्वारा पूछे गए प्रश्न के उत्तर मे प्रभु महावीर ने जो उत्तर दिया, वह आप कुछ शब्दो मे सुन ही चुके होगे। मै उस उत्तर के विषय मे विस्तार की स्थिति मे नही जा रहा हू। मैं आपके समक्ष कुछ सकेत ही कर रहा हू कि आप इस आतरिक शक्ति और निधि को पहिचाने। आप अपने जीवन के स्तर को नीति के साथ रखें, जिससे कि आप प्रतिक्षण अपने सद्भाग्य का निर्माण कर सके। आप चाहे कुछ भी काम करते हो परन्तु उस प्रसग पर यदि सद्विवेक का ध्यान है तो सद्भाग्य का निर्माण हो सकता है और सद्गति प्राप्त की जा सकती है।

●●●

बीकानेर—

स० २०३०, श्रावण कृष्णा ६

शास्त्रों का रहस्य

धार तलवारनी सोहली, दोहली चोदमा जिन तणी चरणसेवा ।

अनन्तनाथ परमात्मा का स्वरूप तात्त्विक दृष्टि से समझने योग्य है। प्रभु का जीवन अद्भुत है । इस अद्भुत ज्योति की उपासना तलवार की धार से भी कठिन बतलाई गई है ।

यह पचम काल है । इसके अन्दर अनेक प्रकार की विचित्र परिस्थितिया मानव मन को शात न रखते हुए उसकी चचलता को दिन-प्रतिदिन बढा रही हैं । ऐसी मानसिक दशा मे प्रभु के स्वरूप का चितन अति कठिन है। वह स्वरूप मन से, बुद्धि के माध्यम से और चिन्तन की शक्ति से समझा जा सकता है । जिस माध्यम से, जिस मन से तात्त्विक दृष्टि या स्वरूप-चितन किया जाता है, जब उस मन मे ही उलझन हो, मन ही गठीला बना हुआ हो, तब उसकी एकाग्रता स्थिर नही रहती है । ऐसी स्थिति मे परमात्मा के स्वरूप को समझना कठिन हो जाता है।

मन की इस प्रकार की विचित्र दशा बनने के अनेक कारण हैं। पचम काल का प्रभाव, उसकी स्थिति की विचित्रता तो मन को विचित्र बनाने में निमित्त है ही, परन्तु साथ ही इसके प्रभाव से ससार के अन्दर विविध-विचित्र गच्छ, विचित्र-विचित्र परिस्थितिया और विचित्र गुट भी बन रहे है। उनमे मनुष्य का मन उलझ जाता है और वह सही मार्ग से ध्यान हटा कर दूसरी ओर लग जाता है । इसीलिये कवि का कथन है कि–

'गच्छना भेद बहु नयण निहालता, तत्वनी वात करता न लाजे ।'

जहा अलग-अलग पार्टिया हो, अलग-अलग व्यक्तियो के गुट हो, अलग-अलग स्थिति मे चिन्तन हो और अलग-अलग भावना मे स्वार्थ का

अभिमान नही छू रहा है ! यह किस प्रकार की नम्र वृत्ति के साथ अमूल्य निधि को बढा रहा !"

यदि आप अपने जीवन के प्रत्येक चरण को देखने को कोशिश करे तो प्रत्येक चरण मे पुण्य बाध सकते है, धर्म कर सकते है और जीवन को मोड सकते हैं। परन्तु वह विज्ञान और कला मानव के मस्तिष्क मे हो, तभी यह काम बन सकता है। भाई ! खाने से भी पुण्य बधता है, निर्जरा होती है और आत्मशुद्धि होती है। खाने से पाप भी वध सकता है। वह आत्मा को मलिन कर सकता है। उससे दुर्भाग्य का निर्माण भी हो सकता है। यह तो एक ऐसी तलवार है कि जिसको जिधर भी प्रयोग करना चाहे, उधर ही कर सकते हैं। तलवार को अन्य प्राणियो की शाति के लिये, सुरक्षा के लिये काम मे ले सकते हैं तो उससे दूसरो के हाथ-पैर भी काटे जा सकते है। वैसे ही इन्सान की जितनी भी क्रियाये है, उनसे दुर्भाग्य और सद्भाग्य दोनो का निर्माण हो सकता है।

सुबाहुकुमार के सम्बध मे गौतम गणधर के द्वारा पूछे गए प्रश्न के उत्तर मे प्रभु महावीर ने जो उत्तर दिया, वह आप कुछ शब्दो मे सुन ही चुके होगे। मैं उस उत्तर के विषय मे विस्तार की स्थिति मे नही जा रहा हू। मैं आपके समक्ष कुछ सकेत ही कर रहा हू कि आप इस आतरिक शक्ति और निधि को पहिचाने। आप अपने जीवन के स्तर को नीति के साथ रखें, जिससे कि आप प्रतिक्षण अपने सद्भाग्य का निर्माण कर सके। आप चाहे कुछ भी काम करते हो परन्तु उस प्रसग पर यदि सद्विवेक का ध्यान है तो सद्भाग्य का निर्माण हो सकता है और सद्गति प्राप्त की जा सकती है।

●●●

वीकानेर—

स० २०३०, श्रावण कृष्णा ६

राखी का रहस्य

धार तलवारनी सोहली, दोहली चोदमा जिन तणी चरणसेवा ।

अनन्तनाथ परमात्मा का स्वरूप तात्त्विक दृष्टि से समझने योग्य है। प्रभु का जीवन अद्भुत है । इस अद्भुत ज्योति की उपासना तलवार की धार से भी कठिन बतलाई गई है ।

यह पचम काल है । इसके अन्दर अनेक प्रकार की विचित्र परिस्थितिया मानव मन को शात न रखते हुए उसकी चचलता को दिन-प्रतिदिन बढा रही हैं । ऐसी मानसिक दशा मे प्रभु के स्वरूप का चितन अति कठिन है। वह स्वरूप मन से, बुद्धि के माध्यम से और चिन्तन की शक्ति से समझा जा सकता है । जिस माध्यम से, जिस मन से तात्त्विक दृष्टि का स्वरूप-चितन किया जाता है, जब उस मन मे ही उलझन हो, मन ही गठीला बना हुआ हो, तब उसकी एकाग्रता स्थिर नही रहती है । ऐसी स्थिति मे परमात्मा के स्वरूप को समझना कठिन हो जाता है।

मन की इस प्रकार की विचित्र दशा बनने के अनेक कारण है। पचम काल का प्रभाव, उसकी स्थिति की विचित्रता तो मन को विचित्र वनाने मे निमित्त हैं ही, परन्तु साथ ही इसके प्रभाव से ससार के अन्दर विचित्र-विचित्र गच्छ, विचित्र-विचित्र परिस्थितिया और विचित्र गुट भी वन रहे है। उनमे मनुष्य का मन उलझ जाता है और वह सही मार्ग से ध्यान हटा कर दूसरी ओर लग जाता है । इसीलिये कवि का कथन है कि—

'गच्छना भेद वहु नयण निहारता, तत्त्वनी बात करता न लाजै ।'

जहा अलग-अलग पार्टिया हो, अलग-अलग व्यक्तियो के गुट हो, अलग-अलग स्थिति से चितन हो और अलग-अलग भावना से स्वार्थ का

पोषण हो, इस प्रकार का वातावरण जब कुछ इन्सानो मे चलता हो तो व्यक्ति का मन दूषित हुए बिना नही रहता है । व्यक्ति सोचता है कि मैं अमुक गच्छ या अमुक गुट के साथ अमुक तरीके से वध कर चलूगा तो मुझे बडी भारी सफलता मिलेगी । मैं दुनिया मे प्रसिद्ध हो सकूगा । दुनिया मेरे पीछे भागेगी और मै अपना स्वार्थ सिद्ध कर सकूगा । इस प्रकार की भावना जिस मानस मे चलती है तो वह मानस भले ही तत्त्वो की बाते करता हो, ऊपरी दृष्टि से वह कितना ही चितक कहलाता हो परन्तु जब उसके अन्दर स्वार्थ-सिद्धि की आसक्ति रहती है, जब वह इस गच्छ या उस गुट के साथ गाढे तरीके से बध जाता है, तब वह प्रभु की साधना का चिन्तन करने वाला नही रहता है ।

सकेत है कि—'तत्त्वनी बात करता न लाजै ।' जो व्यक्ति इस प्रकार के तुच्छ स्वार्थ के पीछे अपने मन को कु ठित बना कर गुटबाजी की अवस्था मे लुब्ध होता है और साथ ही आध्यात्मिक तत्त्व की बाते भी करता है तो वे बाते उसे शोभा नही देती है । इसलिये सकेत किया गया है कि वह लजाता नही है ।

ऐसे व्यक्ति तात्त्विक बाते करके अपना उदर-पोषण करते फिरते है । साधारण जनता के सामने तो वे कहते है कि हम अध्यात्मवादी है, हम आत्मधर्मी है, हम आत्मसाधना के अतिरिक्त और कुछ भी बात नही करते है, परन्तु उनके जीवन की स्थिति देखी जाए, उनके वर्ताव को देखा जाए तो आध्यात्मिक जीवन की दृष्टि से शून्यता ही मिलेगी । वहा बौद्धिक दृष्टि से कथन तो अवश्य है, परन्तु आत्मा मे विपरीत पुद्गलो का प्रवेश है । रहने के लिये बढिया बगला चाहिये, सोने के लिये गादी-तकिए चाहिए, भोजन मे मिष्टान्न चाहिये और आने-जाने के लिये हजारो रुपयो की मोटर चाहिये । ऐसी अनेक प्रकार की सुख-सुविधा की बाते जिनके आचरण मे हो, जिनका व्यवहार इस प्रकार का पुद्गलानन्दी हो और फिर वे आत्म-तत्त्व की बाते करे कि हमारे समान आध्यात्मिक जीवन का ज्ञाता कोई नही है तो वे अपने मन मे आध्यात्मिक जीवन की

कल्पना भले ही कर ले, परन्तु वस्तुत आध्यात्मिक जीवन के साथ उनका कोई विशेष सम्बन्ध नही है ।

वे ऐसा करते हैं तो दुनिया के लोग कह सकते हैं कि जब तू ससार के परिवार को लेकर चल रहा है, मोह को लेकर चल रहा है तो तू त्यागी नही है । तू आत्मा की साधना मे नही, मोह की साधना मे लगा है । जैसे हम ससार का कार्य करते है वैसे ही तू भी कर रहा है । ऐसी कठिन हालत मे निभने की स्थिति नही रहती है तो वह सोचता है–'दुनिया ठगना मक्कर से, रोटी खाना शक्कर से ।' दुनिया को भुलावे मे डालने के लिये आध्यात्मिक तत्त्व की बाते करते रहे, आध्यात्मिकता की पुस्तके निकालते रहे तो दुनिया कहेगी कि बडे आध्यात्मिक ज्ञानी आ गये हैं । इसकी आड मे पांचो इन्द्रियो के भोगो को भोगते रहो । कलिकाल मे जो इस प्रकार रहते हैं, उन्हे तात्त्विक बाते कहते लज्जा आनी चाहिये । ऐसे व्यक्तियो के लिये सकेत है कि वे मोह के बधन मे पडे हुए है और बनावटी बाते करते है । इसीलिए कवि ने उनको फटकारा है कि उन्हे लज्जा आनी चाहिये क्योकि इस प्रकार की बाते कहना तो 'वदतो व्याघात' है । इसका मतलब है कि वाणी के उच्चारण के साथ ही साथ उसके उच्चारण का स्वय खडन हो जाता है । उदाहरण के तौर पर यदि कोई व्यक्ति कहे कि मेरी मा बाझ है, यानि सतान वाली नही है तो फिर वह उसकी मा कैसे हो गई ? इस प्रकार उस व्यक्ति के कथन से ही उसका खण्डन हो जाता है । वैसे ही आध्यात्मिकता की बातें ऊची है, खरी हैं, परन्तु यदि जीवन मे परिग्रह है, व्यसनो मे आसक्ति है तो वह जीवन स्पष्ट बतलाता है कि आध्यात्मिक-जीवन की बाते सिर्फ वचनो तक ही सीमित हैं । मन मे भौतिक लालसा है और उसकी पूर्ति के लिये सुख के साधनो की सामग्री जुटाई जा रही है ।

शरीर और आत्मा वर्तमान पर्याय की दृष्टि से दूध और पानी की तरह मिले हुए हैं । आत्मा के बिना बेचारा शरीर क्या कर सकता है ? आत्मा-रहित शरीर जड है । यदि शरीर ही कुछ करता है तो आत्मा के

निकल जाने के वाद क्या मुर्दा शरीर कहेगा कि मुझे वढिया मोटर चाहिये, वढिया मिष्टान्न चाहिये, गादी-तकिये चाहिये ? मुर्दा शरीर तो कुछ नही कहता है ।

जिस व्यक्ति को आध्यात्मिक ज्ञान है, जो अनन्तनाथ प्रभु की चरण-सेवा का मर्म समझ गया है, वह कभी नही कहेगा कि मुझे मिष्टान्न चाहिये, गादी-तकिये चाहिये या मोटर चाहिये । वह तो साधना में जीवन वितायेगा । वह शरीर पर ममत्व नही रखेगा, वह किसी वाहन का अवलवन नही लेगा । उसका जीवन समभाव से चलेगा । खाने को जो कुछ मिलेगा, उसे वह स्वाभाविक तौर पर ले लेगा, चाहे उसे भूगडे मिले या उडद के वाकले । रूक्ष अथवा सरस आहार मिलता है तो क्या ? वह तो समभाव से सोचेगा कि मुझे तो शरीर को भाडा देना है, सो दे दू । इस प्रकार का आचरण जिन मानवो का है, वे आध्यात्मिक जीवन की तात्त्विक वाते करे तो फिर भी योग्य है परन्तु जिनके जीवन मे आचरण नही है, वे तो सिर्फ वातो की उडाने भर रहे है ।

बधुओ ! आध्यात्मिक जीवन की जो तीक्ष्ण धार है, उस पर चलना अति कठिन है । वह सहज नही है । उस पर चलने वाले प्राणी बडी विचक्षणता से चलते है । एक क्षण के लिये भी अशुभ योग रूप प्रमाद आया कि इतने मे ही पाचो इन्द्रियो के विषयो ने प्रवेश पा लिया । आसक्ति आ गई तो तलवार की धार के नीचे गर्दन चली जायेगी । वडे-वडे योगी, जिन्होने सर्वस्व का त्याग किया, वे भी प्रसग आने पर फिसल गये ।

अरिष्टनेमि के लघु भ्राता रथनेमि ससार का त्याग करके एक गुफा मे आध्यात्मिक साधना मे बैठे थे । परन्तु वहा भी उनके डिगने का प्रसग आ गया । आधी और तूफान के साथ पानी बरसने लगा । सती राजिमती नेमिनाथ भगवान के दर्शन करने के लिये जा रही थी । वरसात मे भीगते हुए उन्होने उस गुफा मे प्रवेश किया । सती सोचने लगी कि इसमे कौन रह सकता है ? उन्होने बाहर के प्रकाश मे से अधकार मे प्रवेश किया था । जब व्यक्ति सहसा प्रकाश से अधेरे मे प्रवेश करता

है तो उसे जल्दी ही कुछ दिखलाई नही देता है। वहां सती अपने वस्त्रों को अलग करके सुखाने मे तत्पर हुई। वस्त्र सुखाने में कुछ समय लगा। इधर गुफा मे बैठने वाले रथनेमि ने, जो अपनी आध्यात्मिक साधना मे तन्मय थे, राजिमती को देख कर अपने मन के सकल्प विगाडे और आध्यात्मिक धारा से नीचे उतर कर मलिन भावना अभिव्यक्त करने लगे। परन्तु सती तेजोमयी थी और प्रभु के मार्ग को समझने वाली थी। ऐसी कठिन परिस्थिति में भी वह तलवार की धार (सयम) पर अखड रूप से चलने वाली थी। रथनेमि को फिसलते देख कर उस सती ने बोध देना ही उपयुक्त समझा और इस प्रकार फटकार लगाई —

विरत्थु तेऽजसोकामी जो त जीविय कारणा।
वत इच्छसि आवेउ, सेय ते मरण भवे ॥

उत्तरा. अ. २२ श्लोक ४३

अरे! धिक्कार है तुझे अपयश के कामी। तू आत्मिक साधना के लिये साधु बना और आत्मबल साधने के लिये गुफा मे बैठा, परन्तु यहा बैठे-बैठे भी उस साधना से भ्रष्ट होने की स्थिति मे चल रहा है। ऐसे जीवन को धिक्कार है। इससे तो मरण ही श्रेयस्कर है।

सती के ऐसे जोशीले वचन आध्यात्मिक धारा पर चलने के कारण ही तीक्ष्ण थे। वे किसी के दिल पर चोट पहुंचाने के लिये नही थे। वे तीक्ष्ण वचन तो मोह-जाल को काटने के लिये थे। रथनेमि के मन पर उन वचनो का प्रभाव पडा और वह ठिकाने आ गया।

तात्पर्य यह है कि आध्यात्मिक साधना इतनी सहज नही है, जैसा कि लोग सोच लेते हैं। यह बातों से नही, आचरण से आती है। आत्मा के असख्य प्रदेश शरीर मे व्याप्त हैं और शरीर मे रहे हुए हैं। आत्मा मे आध्यात्मिक जागृति है तो वह प्रत्येक प्रदेश में आयेगी, शरीर के कण-कण मे व्याप्त होगी। उसमे से आध्यात्मिकता की सुगध निकलेगी और शरीर के प्रत्येक अवयव मे से आध्यात्मिक जीवन की साधना का सयम अभिव्यक्त होगा, जैसे कि—

हत्थसजए, पायसजए, वायसजए सजइदिए ।
अज्भप्परए सुसमाहि अप्पा, मूत्तत्थ च विआणइ जे स भिक्खू ॥
(दस० सूत्र, अध्य. १०, गाथा १५)

जो हाथो से सयत है, पैरो से सयत है अर्थात् हाथ-पैर आदि अवयवों को कछुवे की तरह सकोच कर रखता है और आवश्यकता पडने पर यतनापूर्वक कार्य करता है, जो वचन से सयत है अर्थात् किसी को सावद्य परपीडाकारी वचन नही कहता, जो सब इन्द्रियो को वश मे रखता है, अध्यात्मरस मे एव धर्मध्यान शुक्लध्यान मे रत रहता है, जो सयम मे अपनी आत्मा को समाधिवत् रखता है, जो सूत्रो और अर्थ को यथार्थ रूप से जानता है, वह भिक्षु कहा जाता है । इस प्रकार की साधना करने वाले अनन्तनाथ भगवान की सेवा कर सकते है ।

बधुओ ! इस आध्यात्मिक साधना के विषय मे आप भी अपने जीवन के धरातल का अवलोकन करे । आज पचम काल मे मानव की जो दुर्दशा है, दयनीय दशा है, उससे अपने आपकी रक्षा करना सहज नही है । जब मानव स्वय के जीवन को नही सभाल सकता है तो उसे दूसरे का अवलबन लेना पडता है । परन्तु उसमे आध्यात्मिक जीवन की प्रेरणा हो, सरक्षण हो, एक दूसरे की हमदर्दी हो, सयम की जागरूकता हो, व्यक्ति एक दूसरे को समझता हो और अपने जीवन की स्थिति को लेकर चलता हो तो दूसरो से सहायता मिलती है । इसमे सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र प्रधान है । इस पचम काल मे ये आवश्यक है । इनके विना व्यक्ति कमजोर बन जाता है तो फिर उठ नही पाता है । यह स्थिति पूर्व-काल मे रही होगी, वर्तमान मे यह सभव है और भविष्य मे भी रह सकती है ।

तीर्थंकरो ने जब चार तीर्थों की स्थापना की तो यह तथ्य सामने आया कि पचम काल मे जन्म लेने वाला व्यक्ति अकेला साधना करने मे समर्थ नही हो सकता है । व्यक्ति का अकेला रहना ठीक नही है, क्योकि न जाने कव विकार झपट्टा मार दे और आध्यात्मिक जीवन से फिसल

जाये । यदि दूसरा साथी है तो उसको वह सभाल सकता है, गिरते हुए को रोक सकता है, उसकी रक्षा कर सकता है । इसीलिये चतुर्विध सघ मे जहा साधु-साध्वियो का प्रसग है तो वहा आज्ञा है कि साधु दो से कम और साध्वी तीन से कम नही रहे । वे एक दूसरे की दृष्टि मे रहे। यह नही कि एक साधु ऊपर की मजिल मे सोता है और एक नीचे की मजिल मे सोता है। ऐसा नही होना चाहिये। वे एक-दूसरे की दृष्टि मे रह कर चले, जिससे कि किसी समय यदि किसी साधक की भावना आध्यात्मिकता से विचलित होती हो तो दूसरा उसे सभाल सके अथवा दूसरे को देख कर स्वय सभल सके ।

आजकल सघों की जो स्थिति चल रही है, वह आध्यात्मिक जीवन के लिये हितावह नही है । जो सघ (समूह) चलता है, वह ऐसा नही होना चाहिये कि उसके दुर्गुणो को हटाया नही जाये और सद्गुणो की कद्र न की जाये। वह कोई सघ नही, समूह नही, जिसमें आध्यात्मिक जीवन की सुरक्षा न हो । जिस सघ में व्यक्तियो के दुर्गुणों को हटाया जाये, आध्यात्मिक असयम को हटाया जाये, सयम को बढाया जाये, ऐसा सघ हर एक व्यक्ति की रक्षा करने में सक्षम है । उसके साथ चला जाये तो नैतिकता का मार्ग बन सकता है। नैतिक जीवन का रक्षण भी एक-दूसरे के सहयोग पर टिका हुआ है । चाहे वह गृहस्थ में हो, भाई या बहिन कोई हो, उसके सरक्षण के लिये परिवार का सहयोग अपेक्षित है। समाज ठीक है तो राष्ट्र का रास्ता ठीक है और राष्ट्र ठीक है तो विश्व का रास्ता ठीक है । इस अवस्था से चिन्तन करेंगे तो पूर्व का इतिहास भी साक्षी देगा। जब पूर्व का इतिहास सामने आता है तो यह विषय स्पष्ट ध्वनित होता है । आज प्रसग आया है तो इसी बात का द्योतन करने के लिये उसे याद किया जाता है ।

बधुओ ! आज रक्षाबधन का पर्व है । बहिनें भाइयो के राखी बाधती हैं । परन्तु भाई भी वापिस बहिनो के राखी बाधते हैं क्या ? बहिन, अपने भाई के राखी क्यो बाधती है ? आप राखी तो बंधाते ही

होगे। बहिन राखी बाधने को आती है तो वह धागा नही बाधती है परन्तु कर्तव्य का बोध कराती है। वह कहती है—'भाई, मैं इस ससार मे सहायता की अपेक्षा रखती हू । समय आने पर मेरी विकट स्थिति भी आ सकती है। उस समय तुम्हारी मदद चाहिये। इसीलिये मैं अपनी रक्षा हेतु तुम्हारे राखी बाधती हू।'' इसी भावना से राखी बाधी जाती है और इसी भावना से राखी बधाई जाती है तो एक बहुत बडा उत्तरदायित्व राखी बधाने वाले पर आ जाता है । परन्तु इस भावना का स्वरूप तो कोई-कोई ही समझते होगे। बहिन ने राखी बाध दी । दो-चार रुपये उसे दे दिए । पोशाक दे दी । बस, इतने मे ही कर्तव्य पूरा समझ लिया जाता है।

यदि किसी समय बहिन सकट मे पड जाती है तो क्या भाई अपने जीवन की बाजी लगा कर भी उस बहिन की रक्षा करता है ? कई भाई, यदि बहिन अच्छी स्थिति मे है तो राखी बंधवा लेगे और यदि वह दयनीय दशा में है तो संभव है कि वे राखी बधाये भी नही। यदि वधवाते है तो उदासीन भावना से बधवा लेते हैं। पैसे वाली बहिन को अधिक पैसे दिये जाते हैं और जो बहिन कमजोर स्थिति मे है, उसे थोडे पैसे देकर ही विदा कर देते है ।

इस ऐतिहासिक प्रसग को कैसे मनाया जाये ? इसके पीछे क्या गूढ रहस्य भरा हुआ है ? आदि प्रश्न विचारणीय हैं । इस त्यौहार के प्रसग को देखते हैं तो वहा आध्यात्यिक जीवन के दर्शन होते है । इस विषय मे एक प्राचीन कथा है—

अकपन नाम के आचार्य आध्यात्मिकता के बहुत बडे ज्ञाता थे। वे ज्ञाता ही नही थे, परन्तु इसे अन्तर्मन मे ओत-प्रोत करके जीवन मे धारण करने वाले भी थे। एक बार सयम के साथ चलने वाले सात सौ शिष्यो के परिवार-सहित वे एक बगीचे मे पधारे । वहा के महाराजा वडे प्रतापी और आध्यात्मिक जीवन के प्रेमी थे, साथ ही वे सत्सगी भी थे । जव महाराजा के कानो मे आचार्यश्री के आगमन की बात पहुंची तो उन्होने सोचा कि आचार्यश्री अपने शिष्य-परिवार सहित बगीचे मे

पधारे हैं। अत: पहले उनके दर्शन करना है, व्याख्यान श्रवण करना है, जीवन को साधना मे लगाना है। ये राजकीय कार्य तो हर रोज ही चलते रहते है परन्तु यह अवसर तो कभी-कभी ही आता है।

महाराजा ने अपने प्रधान नमुचि तथा अन्य कर्मचारियों के समक्ष अपने विचार रखे। जो कर्मचारी आध्यात्मिकता मे रस लेने वाले थे, वे परम प्रसन्न हुए। परन्तु उनमे प्रमुख रूप से काम करने वाला प्रधान नास्तिक विचारो का था। उसने सोचा कि अकपन नाम के आचार्य यहा पधारे हैं। यदि महाराजा ने उनके आध्यात्मिक वचनो को श्रवण कर लिया तो उनकी आध्यात्मिक भावना और भी गहरी हो जायेगी और फिर मैं अपने मनमाने तरीके से भौतिकवाद का प्रचार व प्रसार नही कर सकूगा।

महाराजा ने प्रधान से कहा कि आचार्यश्री अकपन पधारे है, अत. उनका उपदेश सुनने का लाभ प्राप्त करना चाहिये। वगीचे मे चलें और आचार्यश्री के दर्शन करें। इस पर प्रधान ने उत्तर दिया, "राजन्! ऐसे रु ड-मु ड व्यक्तियो के पास जाकर आप क्या करेगे ?" महाराजा ने कहा, "प्रधानजी, आप क्या कहते है ? ये वहुत वडे महात्मा है। इनके समीप जाने से चित्त को वहुत शाति मिलेगी।"

प्रधान सभल गया। उसने सोचा कि महाराजा की उनमे प्रगाढ श्रद्धा है। अतः वह वोला, "राजन्! आप जैसा कहते हैं, वे वैसे ही हैं। परन्तु क्या वे मेरे प्रश्नो का उत्तर दे देगे ?"

प्रधान ने अपने मन में सोचा कि मैं उनके समक्ष अटसंट प्रश्न रखूगा, जिनका उत्तर वे अपने शिष्यो के सामने नही दे पायेगे। उस समय मैं महाराजा से कहूगा कि आप मुझे किनके पास ले आये ? इस प्रकार मन मे कूटनीति रख कर प्रधान ने कहा, "अच्छा महाराज! मैं चलता हू।"

अकपन आचार्य विशिष्ट ज्ञाता थे। उन्होने अपने अन्तर्ज्ञान [illegible] पता लगा लिया कि महाराजा अपने जिस प्रधान के साथ आ रहे [illegible] नास्तिक है। वह जिज्ञासा से नही, परन्तु विजिगीषा (विजय [illegible]

से आ रहा है । वह दूसरा ही वातावरण बनाना चाहता है । इसलिए अकपन आचार्य ने अपने सभी शिष्यो से कहा कि महाराजा तथा प्रधान आएं तब सब मौन रखे । सबने यह आज्ञा शिरोधार्य कर ली ।

प्रधानजी महाराजा के साथ आचार्यश्री के समीप पहुँचे और वहा जाकर प्रश्नो की झडी लगा दी। सब सत मौन-व्रत मे थे । अत उन्हे कुछ भी उत्तर नही मिला । महाराजा उनके मौन-व्रत की आकृति देख कर बहुत प्रसन्न हुए । त्यागी की छाप हर एक व्यक्ति के ऊपर पडे बिना नही रहती है । उनका प्रभाव भव्य था। इस प्रकार महाराजा तो आध्यात्मिकता से प्रभावित हो गये परन्तु प्रधान जब कुतर्क करने लगा और उसे कोई उत्तर नही मिला तो वह बोला, "राजन् ! आप कह रहे थे कि ये बहुत बडे ज्ञानी है, परन्तु ये तो मौन-व्रत लेकर बैठे है ।" महाराजा ने कहा, "ये विशिष्ट साधना मे है, अत मौन-धारण कर रखा है ।" इसके बाद वे लौट चले ।

सयोग की बात है कि उस समय आचार्यश्री का एक शिष्य भिक्षा के लिये नगर मे गया हुआ था, जिसे गुरुवर की आज्ञा की जानकारी नही थी। भिक्षा लेकर जैसे ही वह उस रास्ते से आ रहा था तो सामने से प्रधान जी मजाक उडाते हुए आ गये । सडक के किनारे एक वृक्ष के नीचे प्रधान जी ने उसको रोक लिया और प्रश्न कर बैठे । भिक्षा लेकर आने वाले मुनि ने इस ढग से उत्तर दिया कि प्रधान जी बौद्धिक दृष्टि से परास्त हो गये ।

प्रधान ने विचार किया कि मै साथियो के साथ रहता हू और इनसे सम्मान प्राप्त करता हू । परन्तु इस छोटे मुनि ने इन सबके सामने मेरा मुह बंद कर दिया । अत साथियो के सामने मेरी इज्जत गिर गई । अवसर आने पर इसकी खबर लेनी है । ऐसा विचार करता हुआ वह राजधानी मे पहुँचा और अपनी झूठी प्रतिष्ठा कायम रखने के लिए मुनियो के विरुद्ध षडयत्र रचने लगा ।

मुनि ने आचार्यश्री के समीप पहुच कर मार्ग मे हुई घटना की

जानकारी दी तो आचार्यश्री ने कहा कि तुमको प्रधान जी से बात नही करनी चाहिये थी । शिष्य ने कहा, "गुरुदेव ! मुझे पता नही था ।" आचार्यश्री ने कहा, "खैर, जो हो गया, सो हो गया । परन्तु आज रात को उसी वृक्ष के नीचे जाकर ध्यान करो । यदि उपसर्ग आये तो आध्यात्मिक जीवन मे मजबूत रहना ।" वह शिष्य आज्ञाकारी था। अत गुरु की आज्ञानुसार समय पर वह उसी वृक्ष के नीचे जाकर ध्यान मे लीन हो गया ।

रात्रि मे प्रधान जी अपने सैनिको के साथ उसी रास्ते से जा रहे थे । उनके हाथो मे नगी तलवारे थी। जब वे उस वृक्ष के नीचे से निकले तो उन्होने मुनि को ध्यानावस्था मे देखा और देखते ही कहा कि इसी मुनि ने मुझे परास्त किया है। सब साथियो ने मुनि के चारो तरफ घेरा डाल दिया और तलवारे ऊपर उठा ली। प्रधान ने कहा, "इसके ऊपर सब एक साथ तलवारो से वार करो ।"

वार करने के लिये तलवारे उठाई गई परन्तु वे ऊपर ही उठी रह गई, नीचे न गिर सकी। सारी रात यो ही बीत गई । प्रातःकाल का समय हुआ तो लोगो ने देखा कि यह क्या मामला है ? अरे ! प्रधान जी एक मुनि के ऊपर तलवार उठाये खडे हैं। इतने मे ही महाराजा भी अपने सैनिको सहित वहा आ गये। उन्होने देखा कि प्रधान जी आदि के हाथ तलवारो-सहित ऊपर उठे हुए है और पैर जमीन पर चिपके हुए हैं। प्रधान जी की इस दुर्नीति को देख कर उन्होने उनको बहुत फटकारा ।

समय पर मुनि ने ध्यान खोला और ज्यो ही गुरु की तरफ चलने को पैर उठाये कि उन सब के हाथ-पैर भी खुल गये । वे कुछ भी नही कर पाये । महाराजा ने प्रधान के कृत्यो की भर्त्सना करते हुए उन सब को देश-निकाला दे दिया ।

प्रधान अपमानित होकर एक चक्रवर्ती राजा के यहा पहुँचा । उसमे बौद्धिक कला थी, चतुराई थी । अत उसने अपनी चतुराई से ऐसा

कार्य करके दिखलाया कि चक्रवर्ती महाराजा उस पर अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उन्होने उसे वरदान देने का प्रण कर लिया। प्रधान ने कहा, "महाराज, इस वरदान को भडार मे ही रहने दीजिये। जब आवश्यकता होगी, मैं माग लूगा ।

कुछ समय बाद जब प्रधान को मालूम हुआ कि वही अकपन आचार्य यहा आ गये है तो उसने सोचा कि वहा मेरा तिरस्कार हुआ था, परन्तु यहा मैने चक्रवर्ती से वरदान ले रखा है । अत चक्रवर्ती को यह ज्ञात न हो कि मुनिराज यहा आये है, इससे पहले ही मैं उनसे वरदान माग लू । ऐसा सोच कर उसने चक्रवर्ती महाराजा से अपना वरदान मागा—"महाराज, सात रोज के लिये मैं चक्रवर्ती बनना चाहता हू । अत. इस अवधि मे मेरी नीति मे और व्यवहार मे आप किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही करे ।" महाराजा वचनबद्ध थे । अत उन्होने प्रधान जी को सात दिन के लिये राज-सिहासन सौप दिया और स्वय अन्त पुर मे चले गये ।

प्रधान ने दुर्नीति का प्रयोग करने के विचार से वहा ऐसा प्रसग उपस्थित किया, जिससे कि सातवे रोज उन मुनियो को खत्म किया जा सके । उसने छ ही खडो मे आज्ञा दे दी कि इस प्रकार के साधु-साध्वियो आदि को इस चक्रवर्ती-राज्य मे रहने की आवश्यकता नही है । ये लोग सात दिन मे यहा से चले जाये । यदि चले जाते है तो ठीक है, नही तो उन्हे उठा कर समुद्र मे फिकवा दिया जाएगा अथवा अग्नि मे जलवा दिया जाएगा ।

इस प्रकार की राजाज्ञा से छ खडो मे तहलका मच गया । अब जाये कहा ? उसके बाहर तो समुद्र है । क्या उसमे जाकर गिरे ? इस प्रकार चतुर्विध सघ पर बहुत बडी आपत्ति और निर्ग्रन्थो के हनन होने की स्थिति का प्रसग आ गया ।

गुरुदेव रात्रि के समय स्वाध्याय कर रहे थे। उस समय उन्होने देखा कि आकाश मे श्रवण नक्षत्र कपायमान हो रहा है । उस नक्षत्र को

कापते देख कर उन्होने निश्चय किया कि आज छहो खण्डो में रहने वाला चतुर्विध सघ खतेरे मे है । इसलिये उनके मुंह से सहसा निकल पडा कि—"अहो कष्टम्, अहो कष्टम् !"

उस समय उनका एक शिष्य एक गुफा मे साधना मे बैठा हुआ था । उसने देखा कि गुरुदेव पर कोई आपत्ति आ गई है । अत. वह बाहर आया और बोला, "गुरुदेव, क्या कष्ट है ?" आचार्यश्री ने परिस्थिति समझाते हुए कहा, "आज सूर्योदय होते ही यदि नमुचि नाम के प्रधान को नही समझाया गया तो बहुत बडा अनर्थ होने वाला है। चतुर्विध सघ खतरे मे है । उसका सरक्षण करना अत्यावश्यक है । परन्तु अब कौन सरक्षण करेगा ? राजा चक्रवर्ती तो उसको राज्य सौप कर अन्तपुर मे चला गया है। फिर भी एक उपाय अवश्य है कि उसके छोटे भाई पहाड की गुफा मे ध्यान करके बैठे हुए हैं । उनका नाम विष्णु मुनि है। वे चाहे तो सबको बचा सकते हैं। परन्तु उनके पास यह समाचार पहुँचाये कौन ?"

शिष्य ने निवेदन किया—"गुरुवर ! यदि ऐसा प्रसग है तो मैं अपनी लब्धि के जरिये वहा जा सकता हू । आपकी आज्ञा हो तो मैं वहा जाऊ ।" आचार्य ने कहा, "जाओ और उन्हे शीघ्र सूचना दो ।"

वह शिष्य लब्धि से विष्णुकुमार मुनि के पास जा पहुँचा और सब स्थिति उन्हे समझा दी । विष्णु मुनि वैक्रिय लब्धि-धारक थे । वे उसकी शक्ति से राज्य मे पहुँचे और अपने चक्रवर्ती भाई से जाकर मिले। वे कहने लगे, "आपने यह क्या कर दिया ? किसके हाथ मे सत्ता सौंप दी ? आध्यात्मिक जीवन पर आघात हो रहा है । सर्वस्व-त्यागियो का हनन होने का प्रसग है।" यह सुन कर चक्रवर्ती महाराजा ने कहा, "भाई, मैं क्या कर सकता हू ? मुझे पता नही था कि यह व्यक्ति इस प्रकार की दुष्टता करेगा । मैं तो सात दिन तक इसको कुछ नही कह सकता । तुम जैसा चाहो, वैसा कर सकते हो ।"

विष्णु मुनि ने अपनी वैक्रिय-शक्ति से शरीर का परिवर्तन किया।

वे बावना शरीर बना कर नमुचि के पास गये और उससे कहने लगे, "आप चक्रवर्ती सम्राट के पद पर है तो इस अवसर पर आपको दान भी करना चाहिये।" प्रधान ने तत्काल उत्तर दिया, "कहिए, आप क्या चाहते हैं ?" बावने ने कहा, "मुझे कुछ नही चाहिए। मै तो बस साढे तीन पैंड जमीन चाहता हू।" प्रधान ने हसते हुए कहा—"तथास्तु।"

जमीन एकदम ही थोडी मागी गई थी, परन्तु विष्णुकुमार ने अपना विराट रूप बना कर तीन पैंड मे छहो खण्डो के राज्य को नाप लिया। फिर आधा पैंड बच रहा तो नमुचि ने सोचा—अब क्या करू ? वह वामन के चरणो मे गिर गया। इस प्रकार उसका हृदय बदल गया और चतुर्विध सघ की रक्षा हुई। ऐसे प्रसग से रक्षा-बधन का प्रारम्भ माना जाता है।

लगभग इसी प्रकार का एक प्रसग पुराणो मे भी है। दैत्यो का राजा बलि जब यज्ञादिक प्रक्रियाओ से अपना प्रभाव बढा रहा था तो देवो को खतरा पैदा हो गया। देव अपनी रक्षा मे विफल हुए तो विष्णु भगवान् के पास पहुचे और कहने लगे, "भगवन् ! आप हमारी रक्षा कीजिये।"

उस समय विष्णु भगवान के वामन रूप बनाया और राजा बलि से जाकर बोले, "राजन् ! यज्ञ करके स्वर्ग प्राप्त करना चाहते हो तो दान भी देना चाहिये। बलि राजा ने सोचा कि एक छोटा-सा व्यक्ति दान माग रहा है तो उससे पूछा कि तुम क्या चाहते हो ? वामन ने कहा मुझे तो सिर्फ साढे तीन पैंड धरती चाहिये। राजा बलि ने तत्काल 'तथास्तु' कह कर उसकी बात मान ली।

वामन ने विराट रूप धारण किया और तीन पैंड मे सम्पूर्ण विश्व को नाप लिया। फिर वे कहने लगे, "अब आधा पैर कहा रखू ?" ऐसा कहते हुए उन्होने उस पैर को राजा बलि के सिर पर रख दिया, जिससे वह पाताल लोक मे चला गया।

यहा कथा-भाग की दृष्टि से कथा को न पकड़ें परन्तु इससे रक्षा त्यौहार का प्रचलन कैसे हुआ, यह समझे। देवो की प्रकृति को आध्यात्मिक स्थिति मे समझे और राक्षसी-प्रकृति का अभिप्राय राक्षसो से लें।

इसी प्रकार रक्षा की दृष्टि से इतिहास के पृष्ठ पढे। चित्तौड पर गुजरात के बादशाह ने आक्रमण किया तो परिस्थितिवश मेवाड की महारानी ने दिल्ली के मुगल बादशाह हुमायू के पास राखी भेजी। उस समय हुमायू बगदेश की विजय के लिये जाने वाला था परन्तु महारानी की राखी पाकर वह विजय-अभियान छोड कर महारानी की रक्षा हेतु चित्तौड की ओर चल पडा। यद्यपि वह मुसलमान था परन्तु रक्षाबधन का महत्त्व उसके भी दिमाग मे था।

बधुओ! इस प्रकार रक्षाबधन के कतिपय प्रसगो को आपने सुना। परन्तु आज का मनुष्य क्या कर रहा है? वह रक्षा की कैसी भावना कर रहा है? आज तो तरीका ही बदल गया है। प्राय. करके कुछ ब्राह्मण लोग राखी बाधने को आ जायेंगे और आप राखी बधा लेगे। इसी प्रकार बहनो से भी राखी बधा लेगे और कुछ दक्षिणा दे देगे। आप इतने मात्र से ही कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते है। परन्तु आपने कभी रक्षा की जिम्मेवारी भी महसूस की या नही? यदि इस रक्षा-पर्व की भावना से इस ऐतिहासिक प्रसग को लिया जाए तो आज समाज की जो विचित्र दशा है, वह रुक सकती है।

बधुओ! जगत् के लिये सुखकारी और देवों को भी दुर्लभ इस सुन्दर मानव-जीवन मे व्यक्ति केवल धागे तक ही सीमित नही रहे, परतु अपने कर्तव्य को सभाले। रक्षा-बधन के दिन अपने कर्तव्य पर ध्यान देना है कि किस-किस की जिम्मेवारी ली गई है और किस तरह से उसका पालन कर रहे हैं। जो ऐसा नही कर रहे हैं, वे इस रक्षा-बधन त्यौहार को मनाने के अधिकारी नही है। भाई ने बहिन की जिम्मेवारी ली है तो वह उसकी रक्षा का खयाल रखे। रक्षा-बधन कर्तव्य-पालन का बोध कराता है।

ऐसा भी रिवाज है कि कई व्यक्ति काटा (तराजू) आदि पर भी रक्षा-सूत्र वाधते है। इन पर राखी क्यो वाधते हैं ? इसका उद्देश्य है कि यह सुरक्षित रहे। परन्तु व्यापार के ये साधन तभी सुरक्षित रह सकेंगे, जब वे व्यक्ति ईमानदारी से अपना व्यापार करेंगे ।

ऐसे अनेक साधनो के साथ तो रक्षा-सूत्र वाधने का प्रसग उपस्थित होता है, परन्तु जीवन के साथ रक्षा-सूत्र वाधने का प्रसग उपस्थित नही हो रहा है। जीवन मे रक्षा-सूत्र बाधने के प्रसग को आध्यात्मिक दृष्टि से निभाने की कोशिश करे ।

प्रश्न उठता है – क्या मैं भी आप लोगो के राखी बाधूं ? आप सोचेंगे—"महाराज, आप तो साधु बन गये । आप क्या राखी बाधेंगे ?" हम साधु है। हमारे पास धागे का रूप नही है। हम तो अपने साधु-जीवन की स्थिति से आप लोगो के साधना का धागा वाधना चाहते है। आप इसे बधाने की तैयारी करे और बधाये ।

साधना का धागा क्या है ? साधु और साध्वी-वर्ग अपनी आध्यात्मिक साधना मे चल रहे है । श्रावक-श्राविका को 'अम्मा पिया' (माता-पिता) की उपमा दी गई है । अत साधना का धागा यह है कि श्रावक एव श्राविका, माता-पिता बन कर साधु-साध्वी-वर्ग की रक्षा करने का उत्तरदायित्व सभाले ।

आप सोचते है कि हम क्या रक्षा कर सकते है ? आपको भिक्षा दे देंगे और कभी बीमार होगे तो औषधि दिलवा कर ठीक करवा देंगे। परन्तु आप भोजन और औषधि से शरीर की रक्षा तक ही सीमित नही रहे। यदि आप सतो से राखी बधवाना चाहते है तो भगवान महावीर या तीर्थंकरो की सस्कृति को सुरक्षित रखने की जिम्मेवारी अपने ऊपर लें । सत-जीवन की रक्षा करे । सत-जीवन की जो मर्यादा शास्त्रो मे वर्णित है, उसकी सुरक्षा मे आप मददगार बने । सत अपनी सीमा मे कार्य करे और आप अपनी सीमा मे रहते हुए अपने कर्तव्यो का ध्यान [illegible] । आप सतो को अपने नियमो से डिगाने की कोशिश कभी नही करे।

आपके दिमाग मे यह खयाल भी आ सकता है और आप कह सकते हैं कि महाराज ! जमाना बदल गया है, अब आप भी बदल जाओ और नियम तथा महाव्रतो मे परिवर्तन कर लो ।

यदि आप इस तरह साधु और साध्वी-वर्ग की मर्यादा को बदलने के लिए तैयार हो गये तो आप उनके माता-पिता की उपमा को धारण नही कर सकते हैं । माता-पिता का कर्तव्य है कि पुत्र या पुत्री कभी खतरे मे पडे तो उसकी रक्षा की जाये ।

आप सत और सतियों की तारीफ करते हुए नही चूकते हैं और लवे-लवे भजनो के साथ उनकी स्तुति कर बैठते है । आप ये स्तुति के आभूषण तो सतो के गले मे डाल देते हैं परन्तु सतो के गले मे स्तुति के जेवर डाल कर आप चुप नही रहे । आप ये जेवर पहना तो देते हैं परन्तु उनमे यदि सत फूल गये तो वे आभूषण घात का काम करेगे । अत उनकी रक्षा के लिये आपको तत्पर रहना है । यदि साधु-साध्वी तारीफ मे फूल कर अपने आपको सब कुछ समझ बैठें और मर्यादा-भग करना चाहे तो आपका कर्तव्य है कि विनय के साथ उन्हे कहे कि भगवन्! आप सावधान रहिये ।

आप आदर के साथ कहे—"भगवन् ! सावधानी रखिये । आपने ससार का परित्याग किया है । आप आध्यात्मिक जीवन के साथ तन्मय होकर चल रहे है । आप पवित्रता के प्रतीक है । यदि आप पवित्र रहेंगे तो हमको उज्ज्वलतम उपदेश मिलेगा । आप महाव्रतो को तोड देंगे तो आपका स्वयं का जीवन सुरक्षित नही रहेगा और फिर आप हमको क्या उपदेश देंगे ? आप स्वय अनैतिक जीवन को अपना लेते है और फिर उपदेश देते है तो हमारे जीवन पर कोई असर नही होगा ।

---

* 'भगवन्' का मतलब यहा चारित्र-सम्पन्नता से है । शास्त्र मे अणगार को भी भगवान् कहा गया है । 'स्थविर भगवान्' मे 'भगवान्' शब्द विशेष शक्ति का द्योतन करवाने के लिये लगता है ।

हम अपनी सीमा मे दृढ रहे और आप अपनी सीमा मे दृढ रह कर कार्य करे ।"

आपने ऐसी सावधानी दिला दी तो इससे सतो का मन सतुष्ट हो जाएगा । उन्हे इस प्रकार की शक्ति मिल जाये तो वे अपने आध्यात्मिक जीवन को सुरक्षित रख सकते है—जैसे, राजिमती ने रथनेमि को फिसलने से वचा लिया था । भाई-बहिनो का कर्तव्य है कि सत-सती-वर्ग की मर्यादा को समझते हुए तरीके से उनकी रक्षा करे और चारित्र की स्थिति से थोडी-सी भी त्रुटि मालूम हो तो उनका कर्तव्य है कि वे सत-सतियो को एकात मे विनय के साथ निवेदन करे कि भगवन् ! यह बात कैसे है ? सभव है कि कोई त्रुटि हो तो वे सरलता से स्वीकार कर ले और उसको वही समाप्त कर दिया जाए । परन्तु इस प्रकार उनको कहने पर भी यदि वे नही माने और समाधान भी नही आए तो उनके जो सचालक है यानि आचार्य है, उनके पास जाकर निवेदन करे कि कर्तव्य की दृष्टि से मैंने एकान्त मे ऐसा निवेदन किया था, परन्तु सुनवाई नही हुई है । अत अब मैने आपके सामने निवेदन कर दिया है । जो इस तरह से चलते हैं, वे श्रावक-श्राविका वस्तुत चतुर्विध सघ की रक्षा करने वाले है । सतो से रक्षा बधवाने का यही मतलब है कि अपनी-अपनी स्थिति मे सुदृढ रहे ।

इसके साथ ही गृहस्थ मे और भी अनेक प्रकार की जिम्मेवारिया है, माता-पिता की जिम्मेवारी है, भाई-वहिन की जिम्मेवारी है । उनकी क्या दशा है, किस तरह उनका जीवन चल रहा है ? यह सब ध्यान मे रखना वहुत जरूरी है ।

मै आध्यात्मिक जीवन की रक्षा की वात कह रहा हू । परन्तु उसकी रक्षा तभी होगी, जवकि आपका नैतिक-जीवन सुरक्षित होगा । यदि वह गिरता है तो फिर आध्यात्मिक-जीवन की सुरक्षा कहा है ? अत इस प्रसग से कहना चाहता हूं कि आप यदि अपने आध्यात्मिक-जीवन की सुरक्षा चाहते है तो नैतिकता मे दृढ रहे । अपनी हमदर्दी

हर एक पड़ोसी और हर एक व्यक्ति के साथ रखिये । इस प्रकार रक्षा-बंधन के स्वरूप को समझ कर सबके कल्याण की रक्षा का कार्य करते हुए चलेंगे तो आध्यात्मिकता से आपका जीवन मंगलमय होगा और विश्व मे सुख-शान्ति का प्रचार होगा ।

●●●

बीकानेर—

सं० २०३०, श्रावण शुक्ला १५

नैतिकता-अनैतिकता

धार तलवारनी सोहली, दोहली चोदमा जिन तणी चरणसेवा ।

परमात्मा के चरणो मे प्रार्थना के माध्यम से जब आत्म-निवेदन करने का प्रसग आता है, उस समय भव्य आत्मा को अपनी शक्ति का भान होता है। साधक जब तक बाहर ही बाहर भटकता रहता है, तब तक उसे अदर की शक्ति का ज्ञान नही होता परन्तु जब वह अदर की तरफ देखता है तब जीवन मे रही हुई कमजोरियो का उसे ज्ञान हो जाता है । वह परमात्मा को सम्मुख रख अर जब उच्चतम आदर्श का चिन्तन करता है तब सोचने लगता है कि मै प्रभु की सेवा करने को तो तत्पर हो रहा हू परन्तु मैं वह सेवा जितनी आसान समझता हूँ, वैसी नही है । वह बडी ही कठिन है । परमात्मा के चरणो की सेवा करना तलवार की धार पर चलने से भी कठिन है ।

अदर की जागृति मनुष्य को परमात्मा की ओर आकर्षित करती है । परन्तु जब तक जीवन मे अन्य तत्त्वो का प्रवेश है, तब तक वह परमात्मा की सेवा मे लग नही सकता । वह अदर की विकृत-वृत्तियो को हटाने की कोशिश करता है तो अपनी आतरिक शक्तियो को दुर्बल पाकर सोचता है कि मैंने काफी समय तक अन्दर के जीवन को रोगग्रस्त रखा, विकारो को खुला प्रवेश दिया, जिससे मेरी अतरात्मा की शक्तिया कमजोर बन गई और इस कमजोरी के कारण ही परमात्मा की सेवा मुझे कठिन प्रतीत हो रही है । मै प्रभु के चरणो मे प्रार्थना के माध्यम से केवल शरीर से ही नही, परन्तु अपने अदर की दिव्य-शक्ति को जगाने के लिये परमात्मा को निमित्त बना कर उपस्थित होऊ ।

जब विवेक का दीपक प्रकाशित होता है, उस समय उठ कर आगे बढने की शक्ति का सचार हुए विना नही रहता है। यद्यपि प्रभु को इन चर्म-चक्षुओ से देख नही सकते परन्तु आतरिक चिन्तन से यदि उनके स्वरूप का अवलोकन किया जाए तो उनकी शक्तिया अनुभव होने लगती है। इसीलिये कवि ने सकेत किया है कि—

अनन्त जिनेश्वर नित नमु .... ।

अनन्त जिनेश्वर की अवस्था का मैं चिन्तन करता हूँ तो उनकी अद्भुत शक्ति का पता लगता है। उस अद्भुत शक्ति का दर्शन अतश्चेतना मे होता है। यदि व्यक्ति अपने मुह से उस शक्ति का कथन करना चाहे तो कर नही सकता है। मुह तो नाशवान पदार्थों को व्यक्त करने वाला आत्मा का एक साधन है। मुह से शब्द उच्चारण किये जा सकते है। वचन के माध्यम से ज्योति का कथन किया जा सकता है परन्तु उस अद्भुत ज्योति का वर्णन नही हो सकता है। शब्द स्वय पौद्गलिक रचना का एक तत्त्व है और शास्त्रीय परिभाषा से भाषा-वर्गणा के पुद्गलो को ग्रहण करके छोडता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी इसी बात का सकेत देता है। जब इन्सान बोलता है तो उसके शब्दो का सिलसिला निरन्तर श्रोता के कर्णगोचर होता है और तभी वह उसके शब्दो को ग्रहण कर पाता है। इस प्रकार मुह के माध्यम से शब्द-रचना होती है।

जब आत्मिक शक्ति जन्म ग्रहण करके शरीर का विकास करती है, तब वह मुंह के माध्यम से बोलती है। जो शक्ति शब्दो से अपने वचनो का विनिमय करती है, उसको वचनो से देखा नही जा सकता है और न उसका पूर्ण रूपेण वर्णन किया जा सकता है। इसलिये कवि का सकेत है कि—

ना कहिये ना देखिए, जाके रूप न रेख।

परमात्मा की शक्ति आखो से देखी नही जाती, यह तर्क से समझी नही जाती और मति से पूरी ग्रहण नही की जा सकती, क्योकि ये प्राय: पाच इन्द्रियो और मन के माध्यम के तरीके हैं और वह शक्ति इन्द्रियो

और मन के माध्यम से 'पर' है। कहा भी है—

तक्का तत्थ न विज्जइ, मति तत्थ न गाहिया।

तर्क का इस अद्भुत ज्योति मे प्रवेश नही है। वह तो एक अनुभूति है। तर्क सही भी होता है और गलत भी हो सकता है। तर्क का कोई विशेष प्रतिष्ठान नही होता है। तर्क के माध्यम से व्यक्ति वाद-विवाद कर सकता है परन्तु वह आतरिक अनुभूति को प्रकट नही कर सकता है।

मति का भी वहा पर प्रवेश नही है। मति भी उस ज्योति को ग्रहण नही कर पाती है। इसका कारण यह है कि पाच इन्द्रियो और मन के सहारे जिस ज्ञान की उपलब्धि होती है, वह ज्ञान तो मतिज्ञान है। मतिज्ञान की शक्ति परावलबी होने से इस आत्मा के साक्षात् प्रकाश-पुज को ग्रहण नही कर पाती है। उसको ग्रहण करने के लिये आतरिक साधना, चरित्रनिष्ठा और सागोपाग जीवन का स्वरूप आवश्यक है। इनके बिना इस अनुभूति की अभिव्यक्ति नही होती है। मति का क्षेत्र सीमित है। जो सीमा के साथ है, वह असीम को पकड नही सकता है।

जैसी मति की स्थिति है, वैसी ही दृष्टि की स्थिति है। ये नेत्र जिन अवयवो से बने हुए है, उनके साथ ही वे अपने सजातीय तत्त्वो को देखते है। वे परमात्मा की परम ज्योति को देख नही पाते है। उसके लिये तो उसके मुकाबले की ज्योति की आवश्यकता है। इसलिये कहा है—

ना कहिये ना देखिये, जाके रूप न रेख।

जिनके रूप, वर्ण, गध, रस, स्पर्श की योग्यता है, वे भी स्थूल रूप मे है। बडा रूप है। तभी वह देखा जा सकता है और उसका कथन किया जा सकता है। परन्तु अनन्त जिनेश्वर भगवान की जो परम अद्भुत ज्योति है, वह रूप, रस, गध आदि से रहित है। उसके दर्शन इन चर्म-चक्षुओ से नही होगे और न जिह्वा से उसका वर्णन होगा।

वह ज्योति अनुभव-साध्य है। उस ज्योति को प्रकट किये बिना इन्सान अपनी शक्ति का जैसा चाहिये, वैसा उपयोग नही कर सकता है।

यदि वह उस ज्योति को प्रकट कर लेता है तो मानव तन मे रहता हुआ दिव्य-पुरुष के रूप मे ससार के समक्ष अपनी शक्तियो को रख सकता है। उस दिव्य-शक्ति के प्रकटीकरण के लिये ही कहा गया है कि—

> नाणस्स सव्वस्स पगासणाए, अण्णाणमोहस्स विवज्जणाए।
>
> रागस्स दोसस्स य सखएण, एगन्तसोक्ख समुवेइ मोक्ख ॥
>
> (उत्तरा० सूत्र, अध्य. ३२, गाथा २)

मानव यदि उस शक्ति के दर्शन करना चाहता है तो ज्ञान के नाम से जिस तत्त्व का बोध होता है, जिस तत्त्व को पहिचाना जाता है उसको प्रगट करे। यदि समग्र ज्ञान प्रगट हो जाये तो वह उस परम ज्योति के, अद्भुत ज्योति के दर्शन कर पायेगा। इसीलिये साधक उस परम ज्ञान को प्रगट करने के लिये और अज्ञान तथा मोह को मिटाने के लिये प्रभु की प्रार्थना करता है। उस चरण-सेवा की कठिनता को देख कर वह हतोत्साह होकर अपने आप मे चिन्तन करता है कि यह सेवा तो तलवार की धार से भी कठिन है। फिर भी हतोत्साहित होने की आवश्यकता नही है। उसको साधने के लिये यदि प्रमुख रूप से मानव अपने विकास के सिलसिले को जारी रखे तो अवश्य ही वह उस शक्ति के निकट पहुच सकता है।

इसके लिये शरीर ही माध्यम है। शरीर तो देवो के भी है, पशुओ के भी है और नरक के जीवो के भी है। परन्तु वे शरीर इस परम ज्योति को प्राप्त करने मे समर्थ नही है। मनुष्य का शरीर ही एक ऐसा विशिष्ट शरीर है कि जिसमे आत्मा की अद्भुत ज्योति जगाई जा सकती है। शरीर की प्रक्रिया मे इन्सान रात और दिन अपना समय लगा रहा है। परन्तु वह समझ नही पा रहा है कि मेरे शरीर की ये प्रक्रियाये शुभ है या अशुभ है, ये उस परम प्रकाश की ओर चल रही है या अधकार की ओर जा रही है। मेरे द्वारा प्रकाश को पाने के लिये प्रयत्न किया जा रहा है या अधकार को एकत्रित करने के लिये चेष्टा हो रही है।

यदि चिन्तन नही हो तो जीवन की समस्त प्रक्रियाये बदत

सकती हैं । फिर शरीर का निर्वाह करने के लिये भोजन भी दिया जाये तो उस भोजन को भी माध्यम मान ले कि इस भोजन को मैं शरीर मे पहुँचा कर इसके रस से शरीर की पुष्टि के साथ-साथ अन्दर की ज्योति की पुष्टि करू । इस भावना का सचार यदि मावव के मस्तिष्क मे हो जाये तो वह भोजन के विषय मे भी सावधान रहेगा । वह इस दृष्टि से चलेगा कि—

"आहारमिच्छे मियमेसणिज्ज ।" (उत्तरा अध्य. ३२ गाथा ४)

आप आहार की भी गवेषणा करे । भोजन ग्रहण करे परन्तु वह मित और एषणीय हो । मित का तात्पर्य यह है कि शरीर के लिये जितना आवश्यक है, उतना ही हो । एषणीय का मतलब है कि वह भोजन शुद्ध प्रक्रिया से बना हुआ हो । शुद्ध प्रक्रिया का तात्पर्य दो तरह से लिया जाता है—एक तो रसोई बनाते समय बनाने वाला विधि के साथ भोजन बनाये और दूसरा यह कि भोजन किस रीति-नीति से प्राप्त किया गया है । अर्थात् भोजन नीति का है या अनीति का है । वह किसी के दिल को चोट पहुँचा कर, दिल को निचोड कर प्राप्त किया गया है अथवा उसके मन और मस्तिष्क को सात्वना देते हुए प्राप्त किया गया है। भोजन जुटाने की विधि नैतिक और अनैतिक दोनो प्रकार की हो सकती है । जिसने नैतिक धरातल के साथ आजीविका का उपार्जन किया है और मनुष्य के दिल को सुख पहुँचाते हुए उसे अपनाया है तो उस इन्सान का भोजन लेना एषणीय है । यदि किसी ने अनीतिपूर्वक कार्य किया है और अनीति के माध्यम से भोजन तैयार हुआ है तो उसको ग्रहण करने वाले मनुष्य के विचारो मे परिवर्तन आये बिना नही रहेगा । भले ही वह व्यक्ति गृहस्थ मे रहने वाला हो या साधु-जीवन में रहने वाला हो। हा, यह अवश्य है कि साधु-जीवन की भोजन ग्रहण करने की एषणीय नीति शास्त्रानुसार गृहस्थ की नीति से भिन्न है और गृहस्थ की नीति सामाजिक नीति आदि के ऊपर आधारित है।

भोजन का असर विचारो की स्थिति के साथ है । विचारो के

परिवर्तन मे भोजन निमित्त बनता है। एक व्यक्ति सात्विक भोजन करके साधना मे बैठता है और ज्योति को विकसित करने का प्रयत्न करता है तो वह उस साधना मे जल्दी सफल होता है। इसके विपरीत एक व्यक्ति अशुद्ध भोजन करके, तामसी भोजन का सेवन करके साधना मे बैठेगा तो वह साधना मे पूर्ण सफलीभूत नही होगा। राजसी भोजन करने वाला व्यक्ति भी अन्तर्ज्योति की ओर मुडने मे कठिनाई का अनुभव करेगा। सात्विक भोजन के साथ साधना का सम्बन्ध जुडा हुआ हो। परन्तु सात्विक भोजन भी नीति के द्वारा उपार्जित किया हुआ होना चाहिये।

नीति और अनीति की परिभाषा अलग-अलग क्षेत्रो मे अलग-अलग तरीके की है। सात्विक भोजन की परिभाषा भी सिर्फ अमुक तरह का भोजन ही नही है, वनस्पति का रस ही नही है, वनस्पति का आहार ही नही है। वनस्पति के आहार मे भी विवेक की आवश्यकता है और उनसे भिन्न अभक्ष्य पदार्थ तो सर्वथा त्यागने योग्य हैं। जो भक्ष्य पदार्थ खाने योग्य है, उनमे भी परिमितता हो। आवश्यकता के अनुसार ही उनका ग्रहण हो तो वे सात्विक है। यदि अनावश्यक भोजन लिया जाता है तो वह तामसिक बन सकता है। आप चाहे फलो का रस ही समझिये। यह अत्यन्त सात्विक भोजनो की श्रेणी मे माना जाता है। परन्तु वह भी यदि सीमा से अधिक ग्रहण कर लिया गया तो वह तामस मे परिणित हो सकता है। इसलिये सात्विकता की परिभाषा मित-सीमित आहार मे है और सीमित आहार के पीछे भी नीति तथा अनीति का प्रश्न जुडा हुआ है। इन दोनो प्रश्नो की स्थिति से यदि साधक अपने शरीर की प्रक्रियाओ को चलाये तो वह इस मानव तन में अन्तर्ज्योति की उपलब्धि कर सकता है, वह प्रभु की अनन्त सेवा की साधना साध सकता है। परन्तु जरा सी भी गफलत हुई और मानव के मन मे भोजन के प्रति कुछ भी आसक्ति आ गई तो फिर उसमे गिरावट आना सभव है।

एक साधक सात्विक, मित और एषणीय भोजन के साथ साधना मे तन्मय होकर चला। उसने साधना की शक्ति से अपने जीवन मे ७

देने को था ही क्या ?

कन्या के पिता ने सोचा कि पुत्री का विवाह किया जायेगा तो पडौसियो, सगे-सम्बन्धियो और गाव वालो को भी जिमाना पडेगा। यदि उन्हे नही जिमाया गया तो वे लोग जिन्दगी भर ताना मारते रहेगे कि एक ही विवाह किया और उसमे भी हमारा तो मुह तक मीठा नही कराया। इस विचार से वह गृहस्थ दुखी था। आखिर उसने एक वृद्ध व्यक्ति को ढूढा। वह वृद्ध दूसरी शादी करना चाहता था। कोई कन्या उसके लिये मिल नही रही थी। वृद्ध ने सोचा कि पैसा देकर इस कन्या के साथ शादी कर लू। इधर बेचारा गरीब पिता दुखी था और उधर वृद्ध को पत्नी चाहिये थी।

उस वृद्ध सेठ ने इस गरीब को अच्छी रकम दी। यह भी सोचने लगा कि इस धन से मैं सब न्यात वालो को भलीभाति जिमा दूगा। इस दृष्टि से उसने अपनी पुत्री का विवाह वृद्ध सेठ के साथ कर दिया। उस साठ वर्ष के वृद्ध के साथ उसकी पोती की उम्र की लडकी विवाहिता होकर गई। उस समय उसका कलेजा कितना टूटा हुआ था और वह कितनी दुखी हो रही थी, इसका अनुमान भी नही किया जा सकता। उसका रोना, विलाप करना आसपास रहने वाले व्यक्तियो को भी सहन नही हो रहा था। परन्तु सम्बन्धी जी के व्यक्ति इकट्ठे होकर लड्डू खा गये और वह रोती रही तो रोती रही।

जब पडौसी ने ऐसी स्थिति का वर्णन किया तो महात्मा को स्पष्ट हो गया कि गृहस्थ के यहा जो भोजन का प्रसग बना, वह भी अनीति से परिपूर्ण था। यह अत्यधिक अनीति का भोजन था। इस प्रकार से समाज के ऊपर भारभूत रीति-रिवाज जहा प्रचलित है तो उस समाज की कमर टूटे विना नही रह सकती।

पुराने समय मे तो मृत्यु-भोज की भी प्रथा थी। मृत्यु-भोज कराने वाले व्यक्ति समाज के पच होते थे, विवाह-शादी के प्रसग पर भी जबरदस्ती भोजन बनवा कर जीमने वाले ये पच ही होते थे। मैने मेवाड

मैंने सुना है कि कभी-कभी कुछ ऐसी तुच्छ प्रकृति के पंच भी होते थे कि किसी के पिता की मृत्यु पर यदि कोई गरीब आदमी नहीं जिमा सका तो वे तानों से उसे और छेदते थे कि कुछ मत पूछिये। वे कहते, "क्या ऊपर होकर चला करते हो? तुम्हारे बाप तो अभी तक 'रालोडे' में लोट रहे हैं।" ऐसा सुन कर उस गरीब के कलेजे पर वज्रपात होता और वह अपना घर बेच कर भी उन पंचों एवं नाते-रिश्तेदारों को भोजन करवा देता था।

इसी अनीति को मिटाने के लिये संतों ने उपदेश दिया है कि मरने-मरने ऐसे जीमने का तो त्याग करें। इसी प्रकार कन्या या वर का पैसा लेकर उससे जो भोजन बनाया जाता है तो वह भोजन भी अनीति का कहा जा सकता है।

नीति और अनीति किसके साथ 'फिट' बैठती है? समाज में कई वर्ग हैं। किसको नीति का वर्ग कहा जाये और किसको अनीति का वर्ग कहा जाये? इसका चिन्तन करेंगे तो अलग-अलग वर्ग सामने आयेंगे।

देने को था ही क्या ?

कन्या के पिता ने सोचा कि पुत्री का विवाह किया जायेगा तो पडौसियो, सगे-सम्बन्धियो और गाव वालो को भी जिमाना पडेगा। यदि उन्हे नही जिमाया गया तो वे लोग जिन्दगी भर ताना मारते रहेगे कि एक ही विवाह किया और उसमे भी हमारा तो मुह तक मीठा नही कराया। इस विचार से वह गृहस्थ दुखी था। आखिर उसने एक वृद्ध व्यक्ति को ढूढा। वह वृद्ध दूसरी शादी करना चाहता था। कोई कन्या उसके लिये मिल नही रही थी। वृद्ध ने सोचा कि पैसा देकर इस कन्या के साथ शादी कर लू। इधर बेचारा गरीब पिता दुखी था और उधर वृद्ध को पत्नी चाहिये थी।

उस वृद्ध सेठ ने इस गरीब को अच्छी रकम दी। यह भी सोचने लगा कि इस धन से मैं सब न्यात वालो को भलीभाति जिमा दूगा। इस दृष्टि से उसने अपनी पुत्री का विवाह वृद्ध सेठ के साथ कर दिया। उस साठ वर्ष के वृद्ध के साथ उसकी पोती की उम्र की लडकी विवाहिता होकर गई। उस समय उसका कलेजा कितना टूटा हुआ था और वह कितनी दुखी हो रही थी, इसका अनुमान भी नही किया जा सकता। उसका रोना, विलाप करना आसपास रहने वाले व्यक्तियो को भी सहन नही हो रहा था। परन्तु सम्बन्धी जी के व्यक्ति इकट्ठे होकर लड्डू खा गये और वह रोती रही तो रोती रही।

जब पडौसी ने ऐसी स्थिति का वर्णन किया तो महात्मा को स्पष्ट हो गया कि गृहस्थ के यहा जो भोजन का प्रसग बना, वह भी अनीति से परिपूर्ण था। यह अत्यधिक अनीति का भोजन था। इस प्रकार से समाज के ऊपर भारभूत रीति-रिवाज जहा प्रचलित है तो उस समाज की कमर टूटे बिना नही रह सकती।

पुराने समय मे तो मृत्यु-भोज की भी प्रथा थी। मृत्यु-भोज कराने वाले व्यक्ति समाज के पच होते थे, विवाह-शादी के प्रसग पर भी जबरदस्ती भोजन बनवा कर जीमने वाले ये पच ही होते थे। मैने मेवाड़

मे सुना है कि कभी-कभी कुछ ऐसी तुच्छ प्रकृति के पच भी होते थे कि जिनको पिता की मृत्यु पर यदि कोई गरीब आदमी नही जिमा सका तो वे वाणी के ऐसे तीर छोडते थे कि कुछ मत पूछिये। वे कहते, "क्या ऊपर होकर बाते करते हो ? तुम्हारे बाप तो अभी तक 'रासोडे' मे लोट रहे है। ऐसा सुन कर उस गरीब के कलेजे पर वज्रपात होता और वह अपना घर बेच कर भी उन पचो एव नाते-रिश्तेदारो को भोजन करवा देता था।

इसी अनीति को मिटाने के लिये सतो ने उपदेश दिया है कि कम से-कम ऐसे जीमने का तो त्याग करो। इसी प्रकार कन्या का पर का पैसा लेकर उससे जो भोजन बनाया जाता है तो वह भोजन भी अनीति का कहा जा सकता है।

नीति और अनीति किसके साथ 'फिट' बैठती है ? समाज मे कई वर्ग है। किसको नीति का वर्ग कहा जाये और किसको अनीति का वर्ग कहा जाये ? इसका चिन्तन करेंगे तो अलग-अलग वर्ग सामने आयेंगे।

समाज मे चल रही कुरीतियो के कारण गरीबो को आर्त और रौद्र ध्यान मे डाल कर जो भोजन तैयार किया जाता है, वह अनीति का भोजन है। एक व्यापारी व्यापार करता है। वह व्यापार मे नीति को छोड कर अनीति का अवलबन लेता है और उस कमाई से जो भोजन बनता है तो वह भी अनीति का भोजन कहा जा सकता है। ऐसा इसलिये है कि उसमे उसकी बुरी भावना चल रही है। यद्यपि भोजन तो पदार्थ है, वह स्वय नीति अथवा अनीति नही होता है। इसी प्रकार पैसा भी नीति-अनीति नही है। यह तो नीति-अनीति का निमित्त बनता है। जो व्यापारी मलिन भाव से पैसा कमाता है, उसका भोजन भी अनीति का तामसी भोजन कहा जा सकता है। दूसरे आदमियो को सता कर जो भोजन तैयार होता है, वह भी अनीति का है।

सरकार के खजाने मे जो सपत्ति आती है, वह भी नीति-अनीति रूप हो सकती है। यदि जनता के कल्याण का ध्यान नही रख कर बेशुमार पैसा इकट्ठा किया जाता है तो सरकार का वह पैसा भी अनीति

का है। जो कर्मचारी अनीति के तरीके से पैसा ग्रहण कर रहे है, वह पैसा भी अनीति का है। फिर वे उससे भोजन तैयार करते है तो अनीति के भोजन का प्रसग बनता है। सरकार अनीति से पैसो को इकट्ठा कर के यदि किसी नौकरी करने वाले को वेतन देती है, परन्तु वह सरकारी कर्मचारी मेहनत करके पैसा ले रहा है, ईमानदारी के साथ मजदूरी कर रहा है, जितना पैसा नियत किया गया है उसके अनुरूप अपना समय लगा रहा है तो उसके ग्रहण करने के पश्चात् वह पैसा नैतिकता का हो जायेगा। एक डाक्टर है, जो किसी के यहा से फीस ले रहा है। यदि वह डाक्टर ईमानदारी से फीस ले रहा है तो वह फीस नैतिकता की है, भले ही उसका पैसा अनीति से इकट्ठा किया हुआ हो।

इसी प्रकार अन्य व्यवसायो के लिये भी समझ ले। एक अध्यापक है और नौकरी कर रहा है। यदि वह सिर्फ पैसे के लालच से ही नौकरी नही करता है परन्तु समाज के निर्माण के लिये सेवा की भावना रख कर नौकरी कर रहा है और उसके अनुरूप तनख्वाह ले रहा है तो वह भी नैतिकता की हो जायेगी। इस प्रकार अध्यापक, डाक्टर या सरकारी-कर्मचारी वगैरह का पैसा यदि उनके पास ईमानदारी से आता है तो वह नैतिकता मे परिवर्तित हो जाता है।

साधु-जीवन का भी ऐसा ही प्रसग है। साधु यदि अपनी नीति के साथ चलता है, वह अपने समग्र जीवन को स्व कल्याण और समाज कल्याण के लिये अर्पण करके चलता है, आवश्यकता से अधिक भोजन ग्रहण नही करता है, कल के लिये सग्रह नही करता है परन्तु जीवन-निर्वाह के लिये ही वह गृहस्थ के यहा से भोजन ग्रहण करता है और साधु के लिये बताये गये ४२ दोषो को टाल कर भोजन ग्रहण करता है तो गृहस्थ के यहा भले ही वह भोजन अनैतिकता का हो परन्तु साधु के लिये वह नैतिकता का भोजन हो जायेगा। जैसे सेठ के यहा अनैतिकता का पैसा था परन्तु डाक्टर ने नैतिकता से फीस ली तो वह नैतिकता का पैसा हो गया। उसी नियम के अनुसार चल कर यदि साधु भिक्षा ले रहा है और भिक्षा

लेते हुए यदि उसकी पदार्थ के प्रति आसक्ति नही बढती है और लोभ मे आकर वह अधिक भोजन नही लेता है तो वह भोजन नैतिक हो जाता है। इसके विपरीत यदि उस साधु के भोजन मे लालसा रहती है तो उसका मानस बिगडे बिना नही रहेगा। इस प्रकार नैतिक और अनैतिक स्थिति के लिये हर क्षेत्र मे सावधानी की आवश्यकता है।

मैं कह रहा था कि साधना की ज्योति की तरफ साधु का ध्यान जा रहा था तो वह क्यो बिगडा ? सोचिये लड्डू देने पर उस साधु का मन आकर्षित हो गया और उसने आसक्त होकर भोजन ग्रहण किया। उसने साधु-जीवन की नीति को छोड कर भोजन लिया। अत वह अनैतिकता का भोजन हो गया। जिस समय उसने भोजन ग्रहण किया तो उसकी भावना आसक्ति के साथ चल रही थी। इस कारण उसके मन मे विकृति आई। उस कन्या की स्थिति उस परिवार से युक्त थी और परिवार के सदस्य, जो उसे आनन्द देने वाले थे, वे ही समाज की कुरीतियो के कारण अपनी ईमानदारी को न रख सके और उन्हे पैसे के लिये दीवाना बनना पडा तो वह भावना साधु की स्थिति के साथ भी जुड गई। भावना का भावना के ऊपर असर होता है। अत साधु की साधना मे वह रोती हुई कन्या आई। इसका मतलब है कि गृहस्थ के मन मे जो रोती हुई कन्या का नक्शा था, उसका असर साधु के मन पर भी पड गया।

आप मलिन भावना से किसी के समीप आकर खडे रहे। सामने वाले व्यक्ति का मन पवित्र है तो मलिन मन वाले व्यक्ति पर स्वच्छ व्यक्ति की भावना का असर पडे बिना नही रहेगा। काला पदार्थ दर्पण के सामने आये तो उसकी छाया दर्पण मे पडे बिना नही रहेगी। उसी प्रकार स्वच्छ दिल का असर मलिन भावना वाले आदमी के ऊपर पडे बिना नही रहेगा। भिक्षा ग्रहण करते समय उस साधु ने वह प्रतिबिंब अपने मन मे ले लिया था। उसने कुरीति का भोजन ग्रहण किया। फिर वह साधना करने बैठा तो रोती हुई कन्या उसके सामने आई।

इसका विश्लेषण गुरु ने किया, "भाई, यह जो तुम्हारी साधना बिगडी है, तुम्हारी ज्योति विलुप्त हुई है, उसमे निमित्त वह भोजन बना है। तुम्हारी भावना बिगडी तो तुम स्वय अनैतिकता के धरातल पर पहुँच गये। तुम सच-सच कहो, क्या लड्डू ग्रहण करते समय तुमने साधु वृत्ति का ध्यान रखा या आसक्तिपूर्वक भोजन ग्रहण करने की भावना बनाई थी?"

शिष्य ने सरलता से निवेदन किया—"गुरुवर! सही बात यह है कि उन लड्डूओ पर मेरा मन चल गया और मैने साधुओ के नियमो का ध्यान न रखते हुए भोजन ग्रहण किया। उस बाई की बात सुन कर मेरे मन मे विचार जरूर पैदा हुआ परन्तु मै लालसा से भोजन लेकर चला आया।"

गुरुदेव ने कहा, "याद रखो, अन्दर की ज्योति को बाकायदा कायम रखना चाहते हो तो अपने दिल मे अनैतिकता का प्रवेश मत होने दो। साधु-जीवन की दिनचर्या को व्यवस्थित रखो। गृहस्थ के यहा पहुँचो तो स्थिति का अवलोकन करो। अपनी विधि के साथ भोजन लाओगे तो तुम्हारी साधना कायम रहेगी और यदि अनीति से लाओगे तो वह अवश्य ही नष्ट हो जायेगी।

शिष्य ने उसी वक्त सकल्प किया कि आईदा ऐसा कभी नही करूगा और पूरी विधि के साथ रहूगा। साथ ही उसने पूछा कि गई हुई ज्योति वापिस मिलने का क्या उपाय है? गुरुदेव ने कहा, "इसका उपाय यही है कि तुम तीन दिन तक तप करो। तुम्हारे पेट मे उस भोजन का अश है, अत जीवन को माजने के लिये प्रायश्चित्त स्वरूप तुम इस प्रकार साधना मे बैठो कि तुम्हारी बुद्धि के साथ ही तुम्हारे पेट की पाचन-क्रिया भी साफ हो जाये। तुम्हारे पेट मे जो तामसिक वृत्ति का आहार गया है, उसकी सफाई होगी तभी वह ज्योति पुन जागृत हो सकेगी।

गुरुदेव की आज्ञा पाकर उस शिष्य ने ऐसा ही किया। तीन

दिन के पश्चात् उसे अद्भुत ज्योति के दर्शन हुए और वह पुनः उल्लास से प्रफुल्लित हो गया।

अन्तर्ज्योति की साधना का यह प्रसग ध्यान मे रखने योग्य है। नैतिकता का विषय तलवार की धार से भी कठिन है। इसके ऊपर चलने वाला व्यक्ति थोडी भी गफलत करेगा तो गिरे विना नही रहेगा। आज की स्थिति वडी विचित्र है। मैं वारीक वात क्या वताऊ ? इतनी बारीकी मे इन्सान पहुँचे या नही पहुचे परन्तु उसका ज्ञान तो करना ही है, अपने नैतिकता के धरातल को सुधारना ही है।

आज किसी के यहा कोई चोरी कर ले और चोरी करके चला जाये। चाहे देखने वाला नही हो, परन्तु उसका मन तो उसको स्वय को नोचता रहेगा कि हाय ! तूने पाप किया और इस पाप का क्या प्रायश्चित्त होगा ? वह जिस क्षेत्र मे भी वैठेगा, वही उसकी भावना रहेगी कि कही मेरी स्थिति प्रकट न हो जाये, चोरी प्रकट न हो जाये। आज व्यापारी-वर्ग के लिये भी क्या कहू ? अन्य वर्गो की स्थिति भी सुरक्षित नही है। अनैतिक भावना का वोलवाला है। आज कुए मे ही नही, समुद्र मे भाग पड चुकी है।

आज का व्यक्ति अनैतिक क्यो वन रहा है ? सुना जाता है कि आज व्यापारी दूसरे नम्बर की वहिया रखता है तो क्यो रखता है ? व्यापारी तो पहले भी थे और आज भी है। क्या पहले के व्यापारी भी दूसरे नम्बर की वही रखते थे ? उन व्यापारियो के पास कभी दूसरे नम्बर का पैसा सुनने मे आया क्या ? जहा तक मै सोचता हू और ऐतिहासिक पृष्ठो पर खयाल करता हू तो प्रकट होता है कि उस समय देश की नीति सुधरी हुई थी। व्यापारी-वर्ग और जनता भी प्राय नीति से रहते थे।

वाजार मे तो क्या-क्या होता होगा परन्तु कभी-कभी ऐसा भी सुनने को मिलता है कि धर्मस्थान पर पहुचने वाले व्यक्ति भी अनैतिक धधे से वचे हुए नही हैं। उन्हे और कुछ नही मिलता है तो वे चप्पलें

ही चुरा कर ले जाते हैं। वे वहा ज्योति लेने जाते है या जूतिया लेने जाते है।

आज के मानव का मानस इस प्रकार बिगडा हुआ है कि जितना अधिक उसको उपदेश दिया जा रहा है, उतनी ही कई क्षेत्रो मे बुराइया बढती जा रही है। इसका कारण यह है कि भारतीय अपने वास्तविक लक्ष्य की ओर नही जा रहे है। वे क्या सोचते है ? यदि चद चादी के टुकडो को इकट्ठा भी कर लिया तो क्या वह ज्योति मिल पाती है ? जब शाति नही, भगवान की भक्ति नही तो क्यो आप अपने जीवन को मलिन बनाये जा रहे है ? आप चिन्तन करे। मैं उनको विशेष रूप से कहना चाहूगा, जो अपने जीवन मे कुछ 'कन्ट्रोल' (सयम) नही ला पा रहे हैं और ऐसी अधाधुन्धी मे चल रहे है। वे अपने जीवन को तो नष्ट ही कर रहे है।

इस नीति मे आमूल-चूल परिवर्तन लाने के लिये आध्यात्मिकता की आवश्यकता है। मनुष्य इन तुच्छ पदार्थो की तरफ झुका हुआ है। वह सोच नही पा रहा है कि इस मनुष्य-तन मे रह कर क्या करना उचित है ? वह सोच ले कि मनुष्य-तन मे रह कर परमात्मा की अद्भुत ज्योति का दर्शन करना है तो ठीक तरह से आचरण-व्यवहार किया जाये। अन्दर की अनुभूति को प्रकट करने मे जो कोई रुकावट है, उसको छोडा जाये। परन्तु यह लक्ष्य स्थिर नही होता है, तब तक यह धाधलेबाजी चलती रहती है। अत मनुष्य को अपना लक्ष्य ठीक तरह से कायम कर के अद्भुत ज्योति की तरफ अग्रसर होना है। परमात्मा के चरणो की सेवा करके वह अद्भुत ज्योति पा सकता है।

ऐसी स्थिति मे सुन्दरतम वायुमडल की आवश्यकता है। इसके लिये सोचता हू तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचता हू कि जीवन मे समता-दर्शन की नितात आवश्यकता है। यह तथ्य बुजुर्गो, तरुणो, बच्चो और बहिनो के मस्तिष्क मे आये। सबका ध्यान इस तरफ केन्द्रित हो। सब अपने जीवन का निर्माण करने की कला सीखे। सभी अनैतिक जीवन

से छुटकारा पाकर साधना मे तन्मय हो । यदि साधक इस प्रकार का सुधार करने मे लग गये तो तलवार की धार-सा कठिन-मार्ग भी सरल हो जायेगा ।

●●●

बीकानेर—

स० २०३०, श्रावण शुक्ला १४

ही चुरा कर ले जाते है। वे वहा ज्योति लेने जाते है या जूतिया लेने जाते है।

आज के मानव का मानस इस प्रकार बिगडा हुआ है कि जितना अधिक उसको उपदेश दिया जा रहा है, उतनी ही कई क्षेत्रों मे बुराइया वढती जा रही है। इसका कारण यह है कि भारतीय अपने वास्तविक लक्ष्य की ओर नही जा रहे है। वे क्या सोचते है ? यदि चद चादी के टुकडो को इकट्ठा भी कर लिया तो क्या वह ज्योति मिल पाती है ? जब शाति नही, भगवान की भक्ति नही तो क्यो आप अपने जीवन को मलिन बनाये जा रहे है ? आप चिन्तन करे। मै उनको विशेप रूप से कहना चाहूगा, जो अपने जीवन मे कुछ 'कन्ट्रोल' (सयम) नही ला पा रहे हैं और ऐसी अधाधुन्धी मे चल रहे है। वे अपने जीवन को तो नष्ट ही कर रहे है।

इस नीति मे आमूल-चूल परिवर्तन लाने के लिये आध्यात्मिकता की आवश्यकता है। मनुष्य इन तुच्छ पदार्थो की तरफ झुका हुआ है। वह सोच नही पा रहा है कि इस मनुष्य-तन मे रह कर क्या करना उचित है ? वह सोच ले कि मनुष्य-तन मे रह कर परमात्मा की अद्भुत ज्योति का दर्शन करना है तो ठीक तरह से आचरण-व्यवहार किया जाये। अन्दर की अनुभूति को प्रकट करने मे जो कोई रुकावट है, उसको छोडा जाये। परन्तु यह लक्ष्य स्थिर नही होता है, तब तक यह धाधलेबाजी चलती रहती है। अत मनुष्य को अपना लक्ष्य ठीक तरह से कायम कर के अद्भुत ज्योति की तरफ अग्रसर होना है। परमात्मा के चरणो की सेवा करके वह अद्भुत ज्योति पा सकता है।

ऐसी स्थिति मे सुन्दरतम वायुमडल की आवश्यकता है। इसके लिये सोचता हू तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचता हू कि जीवन मे समता-दर्शन की नितात आवश्यकता है। यह तथ्य बुजुर्गों, तरुणो, बच्चो और बहिनो के मस्तिष्क मे आये। सबका ध्यान इस तरफ केन्द्रित हो। सब अपने जीवन का निर्माण करने की कला सीखे। सभी अनैतिक जीवन

ऊपर अमुक विपत्ति आ गई, अमुक समस्या आ गई तो उसकी पूर्ति कैसे की जाये, अब कैसे क्या होगा ? इस प्रकार की धारणा को मस्तिष्क मे लाकर यह आत्मा अपने आपको हीन-भावना मे वहा रही है । इस हीन-भावना का दुष्परिणाम यह है कि इन्सान की प्रफुल्लित वनने की शक्ति का विकास नही हो रहा है, उसे पवित्र शक्ति का उद्‌वोधन नही मिल रहा है ।

इन्सान को अपनी शक्ति पर विश्वास रख कर चलना है और दृढता के साथ विकास करने का सकल्प करना है । जव तक वह दृढतापूर्वक अपने जीवन को नही सभालेगा, तव तक जीवन की दयनीय दशा न आज समाप्त होने वाली है, न कल समाप्त होने वाली है और न वर्षो वाद समाप्त होने वाली है । उसकी यह दशा भूतकाल से, वहुत वर्षो से, अनादि काल से चली आ रही है और भविष्य मे भी चलती रह सकती है । यदि वह इस जीवन को महत्त्वपूर्ण दृष्टि से देखना चालू कर दे तो उसे पूर्वकालीन वृत्तान्त ज्ञात हो सकता है और भविष्य के लिये भी भव-भ्रमण की सीमा निर्धारित की जा सकती है ।

आत्मा इस जीवन मे वास्तविक आनन्द की अनुभूति कर सकती है । परन्तु यह अनुभूति सहसा एक साथ उपलव्ध नही हो सकती । यदि इसको शनै -शनै सपादित किया जाए तो यह अवश्य ही इस जीवन की वास्तविक उपलब्धि कर सकती है । मानव का ध्यान जब इस विषय की ओर हो, तो कैसा भी कुछ हो, वह इस काम को पूरा कर सकता है ।

एक मनुष्य ने बहुत बडी गेहू की राशि देखी, जिसमे वहुत अधिक ककर मिले हुए थे । फिर उसने यह विचार किया कि इस गेहू के साथ बहुत ककर है और यदि ये ककर साथ रखे गए तो मेरे जीवन के लिये घातक बनेगे । मैं इन ककरो को बीन लू तो शुद्ध गेहू मेरे जीवन के लिये हितावह हो सकता है । इस भावना से यदि वह गेहू को देखना चालू करे और उसमे रहने वाले ककरो को चुनने की कोशिश करे तो आहिस्ता-आहिस्ता वह उस गेहू की राशि को ककरो से रहित

कर सकता है। परन्तु यदि कोई चाहे कि गेहू की राशि को मैं एक साथ ही ककरो से रहित कर दू तो यह शक्य नही है।

इस जीवन की भव्य राशि मे ककरो के समान जो हीन-भावनाओ का सचय है, मलिन तत्त्वो की उपस्थिति है, यदि उनको चुनने का कोई मुहावरा बना ले तो वह प्रतिदिन अपने गुणो मे वृद्धि करता हुआ अपने इसी जीवन मे पुण्यशाली बन सकता है। यदि कोई मनुष्य कभी ऐसा सोचता है कि मैं इस वर्तमान दृष्टि से जीवन को पुण्यशाली कैसे बना सकता हू क्योकि मेरा जन्म तो एक दरिद्र घराने मे हुआ है और मैं स्वय भी दरिद्र हू, यदि इस प्रकार की भावना किसी के मस्तिष्क मे हो तो यह एक बहुत बडी भ्राति है। मनुष्य का जन्म चाहे किसी घराने मे हुआ हो परन्तु आत्मा स्वय दरिद्री नही है। यदि कोई आत्मा आर्थिक दृष्टि से कमजोर परिवार मे जन्म लेने पर भी पुरुषार्थ करे तो वर्तमान जीवन मे वह समृद्धिशाली बन सकती है। साथ ही वह अपने पूर्व के बाधे हुए भाग्य का भी परिवर्तन कर सकती है, बशर्ते कि वह मजबूत बध-वाला नही हो। कहा है कि—

'पूर्व-जन्म-कृत कर्म तद्दैवमिति कथ्यते।'

पूर्व जन्म मे जो कर्म किए गए है, उनका आत्मा के साथ बध हुआ है—वही भाग्य और दैव की सज्ञा पाता है। यदि वह बधन ढीला हो और वर्तमान मे दरिद्री अवस्था मे पैदा होने वाला व्यक्ति सत्सग के सम्पर्क से अच्छा पुरुषार्थ करे तो वह पूर्वजन्म के दुर्भाग्य को भी सद्भाग्य मे परिवर्तित कर सकता है। सामुद्रिकशास्त्र के ग्रथो के अनुसार हस्त-रेखाओ को लेकर लोग भाग्य का चिन्तन किया करते हैं कि तू अमुक बन सकता है और तू अमुक नही बन सकता है। परन्तु ज्ञानीजनो का कथन है कि यह सब भूल-भुलैया का खिलौना है। यदि इन्सान अपनी स्वय की शक्ति पर विश्वास करे, सयमित जीवन से दृढ पुरुषार्थ करे तो वह पूर्व की रेखाओ का आमूल-चूल परिवर्तन कर सकता है। रेखाओ को देख कर अपने पुरुषार्थ का चयन मत करो। परन्तु आत्मिक शक्ति